॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कठोपनिषद्

कठोपनिषद् उपनिषदोंमें बहुत प्रसिद्ध है। यह कृष्णयजुर्वेदकी कठ-शाखाके अन्तर्गत है। इसमें नचिकेता और यमके संवादरूपमें परमात्माके रहस्यमय तत्त्वका बड़ा ही उपयोगी और विशद वर्णन है। इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक अध्यायमें तीन-तीन वल्लियाँ हैं।

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ=पूर्णब्रह्म परमात्मन्!; (आप) **नौ**=हम दोनों (गुरु-शिष्य)-की; **सह**=साथ-साथ; **अवतु**=रक्षा करें; **नौ**=हम दोनोंका; **सह**=साथ-साथ; **भुनक्तु**=पालन करें; **सह**=(हम दोनों) साथ-साथ ही; **वीर्यम्**=शक्ति; **करवावहै**=प्राप्त करें; **नौ**=हम दोनोंकी; **अधीतम्**=पढ़ी हुई विद्या; **तेजस्वि**=तेजोमयी; **अस्तु**=हो; **मा विद्विषावहै**=हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

व्याख्या—हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोंकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करें, हम दोनोंका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करें, हम दोनोंकी अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामें परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहें, हमारे अन्दर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनों तापोंकी निवृत्ति हो।

प्रथम अध्याय

[प्रथम वल्ली]

ॐ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस॥ १॥

ॐ=सच्चिदानन्दघन परमात्माका एक नाम; **ह वै**=प्रसिद्ध है कि; **उशन्**=यज्ञका फल चाहनेवाले; **वाजश्रवसः**=वाजश्रवाके पुत्र (उद्दालक)-ने; **सर्ववेदसम्**=(विश्वजित्-यज्ञमें) अपना सारा धन; **ददौ**=(ब्राह्मणोंको) दे दिया; **तस्य**=उसका; **नचिकेता**=नचिकेता; **नाम ह**=नामसे प्रसिद्ध; **पुत्रः**=एक पुत्र; **आस**=था॥ १॥

व्याख्या—ग्रन्थके आरम्भमें परमात्माका स्मरण मङ्गलकारक है, इसलिये यहाँ सर्वप्रथम 'ॐ' कारका उच्चारण करके उपनिषद्का आरम्भ हुआ है। जिस समय भारतवर्षका पवित्र आकाश यज्ञधूम और उसके पवित्र सौरभसे परिपूर्ण रहता था, त्यागमूर्ति ऋषि-महर्षियोंके द्वारा गाये हुए वेद-मन्त्रोंकी दिव्य ध्वनिसे सभी दिशाएँ गूँजती रहती थीं, उसी समयका यह प्रसिद्ध इतिहास है। गौतमवंशीय वाजश्रवात्मज महर्षि अरुणके पुत्र अथवा अन्नके प्रचुर दानसे महान् कीर्ति पाये हुए (वाज=अन्न, श्रव=उसके दानसे प्राप्त यश) महर्षि अरुणके पुत्र उद्दालक ऋषिने फलकी कामनासे विश्वजित् नामक एक महान् यज्ञ किया। इस यज्ञमें सर्वस्व दान करना पड़ता है, अतएव उद्दालकने भी अपना सारा धन ऋत्विजों और सदस्योंको दक्षिणामें दे दिया। उद्दालकजीके नचिकेता नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था॥ १॥

तꣳह कुमारꣳसन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत॥ २॥

दक्षिणासु नीयमानासु=(जिस समय ब्राह्मणोंको) दक्षिणाके रूपमें देनेके लिये (गौएँ) लायी जा रही थीं, उस समय; **कुमारम्**=छोटा बालक; **सन्तम्**=होनेपर भी; **तम् ह**=उस (नचिकेता)-में; **श्रद्धा**=श्रद्धा (आस्तिक बुद्धि)-का; **आविवेश**=आवेश हो गया (और); **सः**=(उन जराजीर्ण गायोंको देखकर) वह; **अमन्यत**=विचार करने लगा॥ २॥

व्याख्या—उस समय गो-धन ही प्रधान धन था और वाजश्रवस उद्दालकके घरमें इस धनकी प्रचुरता थी। ऐसा माना गया है कि होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता—ये चार प्रधान ऋत्विज् होते हैं, इनको सबसे अधिक गौएँ दी जाती हैं; प्रशास्ता, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी और प्रस्तोता—इन चार गौण ऋत्विजोंको मुख्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा आधी; अच्छावाक, नेष्टा, आग्नीध्र और प्रतिहर्ता—इन चार गौण ऋत्विजोंको मुख्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा तिहाई एवं ग्रावस्तुत्, नेता, होता और सुब्रह्मण्य—इन चार गौण ऋत्विजोंको मुख्य ऋत्विजोंकी अपेक्षा चौथाई गौएँ दी जाती हैं। नियमानुसार जब इन सबको दक्षिणाके रूपमें देनेके लिये गौएँ लायी जा रही थीं, उस समय बालक नचिकेताने उनको देख लिया। उनकी दयनीय दशा देखते ही उसके निर्मल अन्तःकरणमें श्रद्धा—आस्तिकताने प्रवेश किया और वह सोचने लगा—॥ २॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥ ३॥

पीतोदकाः=जो (अन्तिम बार) जल पी चुकी हैं; **जग्धतृणाः**=जिनका घास खाना समाप्त हो गया है; **दुग्धदोहाः**=जिनका दूध (अन्तिम बार) दुह लिया गया है; **निरिन्द्रियाः**=जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी हैं; **ताः**=ऐसी (निरर्थक मरणासन्न) गौओंको; **ददत्**=देनेवाला; **सः**=वह दाता (तो); **ते लोकाः**=वे (शूकर-कूकरादि नीच योनियाँ और नरकादि) लोक; **अनन्दाः**=जो सब प्रकारके सुखोंसे शून्य; **नाम**=प्रसिद्ध हैं; **तान्**=उनको; **गच्छति**=प्राप्त होता है (अतः पिताजीको सावधान करना चाहिये)॥ ३॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तꣳहोवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥ ४॥

सः ह=यह सोचकर वह; **पितरम्**=अपने पितासे; **उवाच**=बोला कि; **तत (तात)**=हे प्यारे पिताजी!; **माम्**=मुझे; **कस्मै**=(आप) किसको; **दास्यसि इति**=देंगे?; (उत्तर न मिलनेपर उसने वही बात) **द्वितीयम्**=दुबारा; **तृतीयम्**=तिबारा (कही); **तम् ह**=(तब पिताने) उससे; **उवाच**=(इस प्रकार क्रोधपूर्वक) कहा; **त्वा**=तुझे (मैं); **मृत्यवे**=मृत्युको; **ददामि इति**=देता हूँ॥ ४॥

व्याख्या—पिताजी! ये कैसी गौएँ दक्षिणामें दे रहे हैं। अब इनमें न तो झुककर जल पीनेकी शक्ति रही है, न इनके मुखमें घास चबानेके लिये दाँत ही रह गये हैं और न इनके स्तनोंमें तनिक-सा दूध ही बचा है। अधिक क्या, इनकी तो इन्द्रियाँ भी निश्चेष्ट हो चुकी हैं—इनमें गर्भधारण करनेतककी भी सामर्थ्य नहीं है! भला, ऐसी निरर्थक और मृत्युके समीप पहुँची हुई गौएँ जिन ब्राह्मणोंके घर जायँगी, उनको दुःखके सिवा ये और क्या देंगी? दान तो उसी वस्तुका करना चाहिये, जो अपनेको सुख देनेवाली हो, प्रिय हो और उपयोगी हो तथा वह जिनको दी जाय उन्हें भी सुख और लाभ पहुँचानेवाली हो। दुःखदायिनी अनुपयोगी वस्तुओंको दानके नामपर देना तो दानके व्याजसे अपनी विपद् टालना है और दान ग्रहण करनेवालोंको धोखा देना है। इस प्रकारके दानसे दाताको वे नीच योनियाँ और नरकादि लोक मिलते हैं, जिनमें सुखका कहीं लेश भी नहीं है। पिताजी! इस दानसे क्या सुख पायेंगे? यह तो यज्ञमें वैगुण्य है, जो इन्होंने सर्वस्व-दानरूपी यज्ञ करके भी उपयोगी गौओंको मेरे नामपर रख लिया है; और सर्वस्वमें तो मैं भी हूँ, मुझको तो इन्होंने दानमें दिया नहीं। पर मैं इनका पुत्र हूँ, अतएव मैं पिताजीको इस अनिष्टकारी परिणामसे बचानेके लिये अपना बलिदान कर दूँगा। यही मेरा धर्म है। यह निश्चय करके उसने अपने पितासे कहा—'पिताजी! मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देते हैं?' पिताने कोई उत्तर नहीं दिया, तब नचिकेताने फिर कहा—'पिताजी! मुझे किसको देते हैं?' पिताने इस बार भी उपेक्षा की। पर धर्मभीरु और पुत्रका कर्तव्य जाननेवाले नचिकेतासे नहीं रहा गया। उसने तीसरी बार फिर वही कहा—'पिताजी! आप मुझे किसको देते हैं?' अब ऋषिको क्रोध आ गया और उन्होंने आवेशमें आकर कहा—'तुझे देता हूँ मृत्युको!'॥ ३-४॥

सम्बन्ध—*यह सुनकर नचिकेता मन-ही-मन विचारने लगा कि—*

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किꣳस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति॥ ५॥

बहूनाम्=मैं बहुत-से शिष्योंमें तो; **प्रथमः**=प्रथम श्रेणीके आचरणपर; **एमि**=चलता आया हूँ (और); **बहूनाम्**=बहुतोंमें; **मध्यमः**=मध्यम श्रेणीके आचारपर; **एमि**=चलता हूँ (कभी भी नीची श्रेणीके आचरणको मैंने नहीं अपनाया, फिर पिताजीने ऐसा क्यों कहा!); **यमस्य**=यमका; **किम् स्वित् कर्तव्यम्**=ऐसा कौन-सा कार्य हो सकता है; **यत् अद्य**=जिसे आज; **मया**=मेरे द्वारा (मुझे देकर); **करिष्यति**=(पिताजी) पूरा करेंगे॥ ५॥

व्याख्या—शिष्यों और पुत्रोंकी तीन श्रेणियाँ होती हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो गुरु या पिताका मनोरथ समझकर उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा किये बिना ही उनकी रुचिके अनुसार कार्य करने लगते हैं, वे उत्तम हैं। जो आज्ञा पानेपर कार्य करते हैं, वे मध्यम हैं और जो मनोरथ जान लेने और स्पष्ट आदेश सुन लेनेपर भी तदनुसार कार्य नहीं करते, वे अधम हैं। मैं बहुत-से शिष्योंमें तो प्रथम श्रेणीका हूँ, प्रथम श्रेणीके आचरणपर चलनेवाला हूँ; क्योंकि उनसे पहले ही मनोरथ समझकर कार्य कर देता हूँ; बहुत-से शिष्योंसे मध्यम श्रेणीका भी हूँ, मध्यम श्रेणीके आचारपर भी चलता आया हूँ; परंतु अधम श्रेणीका तो हूँ ही नहीं। आज्ञा मिले और सेवा न करूँ, ऐसा तो मैंने कभी किया ही नहीं। फिर, पता नहीं, पिताजीने मुझे ऐसा क्यों कहा? मृत्युदेवताका भी ऐसा कौन-सा प्रयोजन है, जिसको पिताजी आज मुझे उनको देकर पूरा करना चाहते हैं?॥ ५॥

सम्बन्ध—*सम्भव है, पिताजीने क्रोधके आवेशमें ही ऐसा कह दिया हो; परंतु जो कुछ भी हो, पिताजीका वचन तो सत्य करना ही है। इधर ऐसा दीख रहा है कि पिताजी अब पश्चात्ताप कर रहे हैं, अतएव उन्हें सान्त्वना देना भी आवश्यक है। यह विचारकर नचिकेता एकान्तमें पिताके पास जाकर उनकी शोकनिवृत्तिके लिये इस प्रकार आश्वासनपूर्ण वचन बोला—*

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः॥ ६॥

पूर्वे=आपके पूर्वज पितामह आदि; **यथा**=जिस प्रकारका आचरण करते आये हैं; **अनुपश्य**=उसपर विचार कीजिये (और); **अपरे**=(वर्तमानमें भी) दूसरे श्रेष्ठ लोग; [**यथा**=जैसा आचरण कर रहे हैं।] **तथा प्रतिपश्य**=उसपर भी दृष्टिपात कर लीजिये (फिर आप अपने कर्तव्यका निश्चय कीजिये; **मर्त्यः**=(यह) मरणधर्मा मनुष्य; **सस्यम् इव**=अनाजकी तरह; **पच्यते**=पकता है अर्थात् जरा-जीर्ण होकर मर जाता है (तथा); **सस्यम् इव**=अनाजकी भाँति ही; **पुनः**=फिर; **आजायते**=उत्पन्न हो जाता है॥ ६॥

व्याख्या—पिताजी! अपने पितामहादि पूर्वजोंका आचरण देखिये और इस समयके दूसरे श्रेष्ठ पुरुषोंका आचरण देखिये। उनके चरित्रमें न कभी पहले असत्य था, न अब है। असाधु मनुष्य ही असत्यका आचरण किया करते हैं; परंतु उस असत्यसे कोई अजर-अमर नहीं हो सकता। मनुष्य मरणधर्मा है। यह अनाजकी भाँति जरा-जीर्ण होकर मर जाता है और अनाजकी भाँति ही कर्मवश पुनः जन्म ले लेता है॥ ६॥

सम्बन्ध—*अतएव इस अनित्य जीवनके लिये मनुष्यको कभी कर्तव्यका त्याग करके मिथ्या आचरण नहीं करना चाहिये। आप शोकका त्याग कीजिये और अपने सत्यका पालन कर मुझे मृत्यु (यमराज)-के पास जानेकी अनुमति दीजिये। पुत्रके वचन सुनकर उद्दालकको दुःख हुआ; परंतु नचिकेताकी सत्यपरायणता देखकर उन्होंने उसे यमराजके पास भेज दिया। नचिकेताको यमसदन पहुँचनेपर पता लगा कि यमराज कहीं बाहर गये हुए हैं; अतएव नचिकेता तीन दिनोंतक अन्न-जल ग्रहण किये बिना ही यमराजकी प्रतीक्षा करता रहा। यमराजके लौटनेपर उनकी पत्नीने कहा—*

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैताꣳशान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥ ७॥

वैवस्वत=हे सूर्यपुत्र!; **वैश्वानरः**=स्वयं अग्निदेवता (ही); **ब्राह्मणः अतिथिः**=ब्राह्मण अतिथिके रूपमें; **गृहान्**=(गृहस्थके) घरोंमें; **प्रविशति**=पधारते हैं; **तस्य**=उनकी; (साधु पुरुष) **एताम्**=ऐसी (अर्थात् अर्घ्य-पाद-

आसन आदिके द्वारा); **शान्तिम्**=शान्ति; **कुर्वन्ति**=किया करते हैं; (अतः आप) **उदकम् हर**=(उनके पाद-प्रक्षालनादिके लिये) जल ले जाइये॥ ७॥

व्याख्या—साक्षात् अग्नि ही मानो तेजसे प्रज्वलित होकर ब्राह्मण-अतिथिके रूपमें गृहस्थके घरपर पधारते हैं। साधुहृदय गृहस्थ अपने कल्याणके लिये उस अतिथिरूप अग्निके दाहकी शान्तिके लिये उसे जल (पाद्य-अर्घ्य आदि) दिया करते हैं; अतएव हे सूर्यपुत्र! आप उस ब्राह्मण-बालकके पैर धोनेके लिये तुरन्त जल ले जाइये। वह अतिथि लगातार तीन दिनोंसे आपकी प्रतीक्षामें अनशन किये बैठा है; आप स्वयं उसकी सेवा करेंगे, तभी वह शान्त होगा॥ ७॥

आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सुनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूꣳश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥ ८॥

यस्य=जिसके; **गृहे**=घरमें; **ब्राह्मणः**=ब्राह्मण अतिथि; **अनश्नन्**=बिना भोजन किये; **वसति**=निवास करता है; (**तस्य**=उस;) **अल्पमेधसः**=मन्दबुद्धि; **पुरुषस्य**=मनुष्यकी; **आशाप्रतीक्षे**=नाना प्रकारकी आशा और प्रतीक्षा; **संगतम्**=उनकी पूर्तिसे होनेवाले सब प्रकारके सुख; **सूनृताम् च**=सुन्दर भाषणके फल एवं; **इष्टापूर्ते च**=यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मोंके और कुआँ, बगीचा, तालाब आदि निर्माण करानेके फल तथा; **सर्वान् पुत्रपशून्**=समस्त पुत्र और पशु; **एतद् वृङ्क्ते**=इन सबको (वह) नष्ट कर देता है॥ ८॥

व्याख्या—जिसके घरपर अतिथि ब्राह्मण भूखा बैठा रहता है, उस मन्दबुद्धि मनुष्यको न तो वे इच्छित पदार्थ मिलते हैं, जिनके मिलनेकी उसे पूरी आशा थी; न वे ही पदार्थ मिलते हैं, जिनके मिलनेका निश्चय था और वह बाट ही देख रहा था; कभी कोई पदार्थ मिल भी गया तो उससे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उसकी वाणीमेंसे सौन्दर्य, सत्य और माधुर्य निकल जाते हैं; अतः सुन्दर वाणीसे प्राप्त होनेवाला सुख भी उसे नहीं मिलता; उसके यज्ञ-दानादि इष्ट-कर्म और कूप, तालाब, धर्मशाला आदिके निर्माणरूप पूर्तकर्म एवं उनके फल नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, अतिथिका असत्कार उसके पूर्वपुण्यसे प्राप्त पुत्र और पशु आदि धनको भी नष्ट कर देता है॥ ८॥

सम्बन्ध—*पत्नीके वचन सुनकर धर्ममूर्ति यमराज तुरन्त नचिकेताके पास गये और पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा विधिवत् उसकी पूजा करके कहने लगे—*

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥ ९॥

ब्रह्मन्=हे ब्राह्मणदेवता!; **नमस्यः अतिथिः**=आप नमस्कार करनेयोग्य अतिथि हैं; **ते**=आपको; **नमः अस्तु**=नमस्कार हो; **ब्रह्मन्**=हे ब्राह्मण!; **मे स्वस्ति**=मेरा कल्याण; **अस्तु**=हो; **यत्**=आपने जो; **तिस्रः**=तीन; **रात्रीः**=रात्रियोंतक; **मे**=मेरे; **गृहे**=घरपर; **अनश्नन्**=बिना भोजन किये; **अवात्सीः**=निवास किया है; **तस्मात्**=इसलिये (आप मुझसे); **प्रति**=प्रत्येक रात्रिके बदले (एक-एक करके); **त्रीन् वरान्**=तीन वरदान; **वृणीष्व**=माँग लीजिये॥ ९॥

व्याख्या—'ब्राह्मणदेवता! आप नमस्कारादि सत्कारके योग्य मेरे माननीय अतिथि हैं; कहाँ तो मुझे चाहिये था कि मैं आपका यथायोग्य पूजन-सेवन करके आपको सन्तुष्ट करता और कहाँ मेरे प्रमादसे आप लगातार तीन रात्रियोंसे भूखे बैठे हैं। मुझसे यह बड़ा अपराध हो गया है। आपको नमस्कार है। भगवन्! इस मेरे दोषकी निवृत्ति होकर मेरा कल्याण हो। आप प्रत्येक रात्रिके बदले एक-एक करके मुझसे अपनी इच्छाके अनुरूप तीन वर माँग लीजिये'॥ ९॥

सम्बन्ध—*तपोमूर्ति अतिथि ब्राह्मण-बालकके अनशनसे भयभीत होकर धर्मज्ञ यमराजने जब इस प्रकार कहा, तब पिताको सुख पहुँचानेकी इच्छासे नचिकेता बोला—*

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥ १०॥

मृत्यो=हे मृत्युदेव!; **यथा**=जिस प्रकार; **गौतम**=(मेरे पिता) गौतमवंशीय उद्दालक; **मा अभि**=मेरे प्रति; **शान्तसंकल्पः**=शान्त संकल्पवाले; **सुमनाः**=प्रसन्नचित्त (और); **वीतमन्युः**=क्रोध एवं खेदसे रहित; **स्यात्**=हो

जायँ (तथा); **त्वत्प्रसृष्टम्**=आपके द्वारा वापस भेजा जानेपर जब मैं उनके पास जाऊँ तो; **मा प्रतीतः**=वे मुझपर विश्वास करके (यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है, ऐसा भाव रखकर); **अभिवदेत्**=मेरे साथ प्रेमपूर्वक बातचीत करें; **एतत्**=यह; **त्रयाणाम्**=अपने तीनों वरोंमेंसे; **प्रथमम् वरम्**=पहला वर; **वृणे**=मैं माँगता हूँ॥ १०॥

व्याख्या—मृत्युदेव! तीन वरोंमेंसे मैं प्रथम वर यही माँगता हूँ कि मेरे गौतमवंशीय पिता उद्दालक, जो क्रोधके आवेशमें मुझे आपके पास भेजकर अब अशान्त और दुःखी हो रहे हैं, मेरे प्रति क्रोधरहित, शान्तचित्त और सर्वथा सन्तुष्ट हो जायँ और आपके द्वारा अनुमति पाकर जब मैं घर जाऊँ, तब वे मुझे अपने पुत्र नचिकेताके रूपमें पहचान कर मेरे साथ पूर्ववत् बड़े स्नेहसे बातचीत करें॥ १०॥

सम्बन्ध—*यमराजने कहा*—

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखꣳ रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्॥ ११॥

त्वाम्=तुमको; **मृत्युमुखात्**=मृत्युके मुखसे; **प्रमुक्तम्**=छूटा हुआ; **ददृशिवान्**=देखकर; **मत्प्रसृष्टः**=मुझसे प्रेरित; **आरुणिः**=(तुम्हारे पिता) अरुण-पुत्र; **औद्दालकिः**=उद्दालक; **यथा पुरस्तात्**=पहलेकी भाँति ही; **प्रतीतः**=यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है, ऐसा विश्वास करके; **वीतमन्युः**=दुःख और क्रोधसे रहित; **भविता**=हो जायँगे; **रात्रीः**=(और वे अपनी आयुकी शेष) रात्रियोंमें; **सुखम्**=सुखपूर्वक; **शयिता**=शयन करेंगे॥ ११॥

व्याख्या—तुमको मृत्युके मुखसे छूटकर, घर लौटा हुआ देखकर मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पिता अरुण-पुत्र उद्दालक बड़े प्रसन्न होंगे, तुमको अपने पुत्ररूपमें पहचानकर तुमसे पूर्ववत् प्रेम करेंगे तथा उनका दुःख और क्रोध सर्वथा शान्त हो जायगा। तुम्हें पाकर अब वे जीवनभर सुखकी नींद सोयेंगे॥ ११॥

सम्बन्ध—*इस वरदानको पाकर नचिकेता बोला, हे यमराज!*—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ १२॥

स्वर्गे लोके=स्वर्गलोकमें; **किंचन भयम्**=किंचिन्मात्र भी भय; **न अस्ति**=नहीं है; **तत्र त्वम् न**=वहाँ मृत्युरूप स्वयं आप भी नहीं हैं; **जरया न बिभेति**=वहाँ कोई बुढ़ापेसे भी भय नहीं करता; **स्वर्गलोके**=स्वर्गलोकके निवासी; **अशनायापिपासे**=भूख और प्यास; **उभे तीर्त्वा**=इन दोनोंसे पार होकर; **शोकातिगः**=दुःखोंसे दूर रहकर; **मोदते**=आनन्द भोगते हैं॥ १२॥

स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वꣳ श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण॥ १३॥

मृत्यो=हे मृत्युदेव!; **सः त्वम्**=वे आप; **स्वर्ग्यम् अग्निम्**=उपर्युक्त स्वर्गकी प्राप्तिके साधनरूप अग्निको; **अध्येषि**=जानते हैं (अतः); **त्वम्**=आप; **मह्यम्**=मुझ; **श्रद्दधानाय**=श्रद्धालुको (वह अग्निविद्या); **प्रब्रूहि**=भलीभाँति समझाकर कहिये; **स्वर्गलोकाः**=स्वर्गलोकके निवासी; **अमृतत्वम्**=अमरत्वको; **भजन्ते**=प्राप्त होते हैं (इसलिये); **एतत्**=यह (मैं); **द्वितीयेन वरेण**=दूसरे वरके रूपमें; **वृणे**=माँगता हूँ॥ १३॥

व्याख्या—मैं जानता हूँ कि स्वर्गलोक बड़ा सुखकर है, वहाँ किसी प्रकारका भी भय नहीं है। स्वर्गमें न तो कोई वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है और न, जैसे मर्त्यलोकमें आप (मृत्यु)-के द्वारा लोग मारे जाते हैं वैसे, कोई मारा ही जाता है। वहाँ मृत्युकालीन सङ्कट नहीं है। यहाँ जैसे प्रत्येक प्राणी भूख और प्यास दोनोंकी ज्वलासे जलते हैं, वैसे वहाँ नहीं जलना पड़ता। वहाँके निवासी शोकसे तरकर सदा आनन्द भोगते हैं। परंतु वह स्वर्ग अग्निविज्ञानको जाने बिना नहीं मिलता। हे मृत्युदेव! आप उस स्वर्गके साधनभूत अग्निको यथार्थरूपसे जानते हैं। मेरी उस अग्निविद्यामें और आपमें श्रद्धा है, श्रद्धावान् ही तत्त्वका अधिकारी होता है; अतः आप कृपया मुझको उस अग्निविद्याका उपदेश कीजिये, जिसे जानकर लोग स्वर्गलोकमें रहकर अमृतत्वको—देवत्वको प्राप्त होते हैं। यह मैं आपसे दूसरा वर माँगता हूँ॥ १२-१३॥

सम्बन्ध—*तब यमराज बोले—*

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्॥ १४॥

नचिकेतः=हे नचिकेता!; **स्वर्ग्यम् अग्निम्**=स्वर्गदायिनी अग्निविद्याको; **प्रजानन्**=अच्छी तरह जाननेवाला मैं; **ते प्रब्रवीमि**=तुम्हारे लिये उसे भलीभाँति बतलाता हूँ; **तत् उ मे निबोध**=(तुम) उसे मुझसे भलीभाँति समझ लो; **त्वम् एतम्**=तुम इस विद्याको; **अनन्तलोकाप्तिम्**=अविनाशी लोककी प्राप्ति करानेवाली; **प्रतिष्ठाम्**=उसकी आधारस्वरूपा; **अथो**=और; **गुहायाम् निहितम्**=बुद्धिरूप गुफामें छिपी हुई; **विद्धि**=समझो॥ १४॥

व्याख्या—नचिकेता! मैं उस स्वर्गकी साधनरूपा अग्निविद्याको भलीभाँति जानता हूँ और तुमको यथार्थरूपसे बतलाता हूँ। तुम इसको अच्छी तरहसे सुनो। यह अग्निविद्या अनन्त—विनाशरहित लोककी प्राप्ति करानेवाली है और उसकी आधारस्वरूपा है। पर तुम ऐसा समझो कि यह है अत्यन्त गुप्त। विद्वानोंकी हृदय-गुफामें छिपी रहती है॥ १४॥

सम्बन्ध—*इतना कहकर यमराजने—*

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः॥ १५॥

तम् लोकादिम्=उस स्वर्गलोककी कारणरूपा; **अग्निम्**=अग्निविद्याका; **तस्मै उवाच**=उस नचिकेताको उपदेश दिया; **याः वा यावतीः**=उसमें कुण्डनिर्माण आदिके लिये जो-जो और जितनी; **इष्टकाः**=ईंटें आदि आवश्यक होती हैं; **वा यथा**=तथा जिस प्रकार उनका चयन किया जाता है (वे सब बातें भी बतायीं); **च सः अपि**=तथा उस नचिकेताने भी; **तत् यथोक्तम्**=वह जैसा सुना था, ठीक उसी प्रकार समझकर; **प्रत्यवदत्**=यमराजको पुनः सुना दिया; **अथ**=उसके बाद; **मृत्युः अस्य तुष्टः**=यमराज उसपर सन्तुष्ट होकर; **पुनः एव आह**=फिर बोले—॥ १५॥

व्याख्या—उपर्युक्त प्रकारसे अग्निविद्याकी महत्ता और गोपनीयता बतलाकर यमराजने स्वर्गलोककी कारणरूपा अग्निविद्याका रहस्य नचिकेताको समझाया। अग्निके लिये कुण्ड-निर्माणादिमें किस आकारकी, कैसी और कितनी ईंटें चाहिये एवं अग्निका चयन किस प्रकार किया जाना चाहिये—यह सब भलीभाँति समझाया। तदनन्तर नचिकेताकी बुद्धि तथा स्मृतिकी परीक्षाके लिये यमराजने नचिकेतासे पूछा कि तुमने जो कुछ समझा हो, वह मुझे सुनाओ। तीक्ष्णबुद्धि नचिकेताने सुनकर जैसा यथार्थ समझा था, सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया। यमराज उसकी विलक्षण स्मृति और प्रतिभाको देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले—॥ १५॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण॥ १६॥

प्रीयमाणः=(उसकी अलौकिक बुद्धि देखकर) प्रसन्न हुए; **महात्मा**=महात्मा यमराज; **तम्**=उस नचिकेतासे; **अब्रवीत्**=बोले; **अद्य**=अब मैं; **तव**=तुमको; **इह**=यहाँ; **भूयः वरम्**=पुनः यह (अतिरिक्त) वर; **ददामि**=देता हूँ कि; **अयम् अग्निः**=यह अग्निविद्या; **तव एव नाम्ना**=तुम्हारे ही नामसे; **भविता**=प्रसिद्ध होगी; **च इमाम्**=तथा इस; **अनेकरूपाम् सृङ्काम्**=अनेक रूपोंवाली रत्नोंकी मालाको भी; **गृहाण**=तुम स्वीकार करो॥ १६॥

व्याख्या—महात्मा यमराजने प्रसन्न होकर नचिकेतासे कहा—तुम्हारी अप्रतिम योग्यता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, इससे अब मैं तुम्हें एक वर और तुम्हारे बिना माँगे ही देता हूँ। वह यह कि यह अग्नि, जिसका मैंने तुमको उपदेश किया है, तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी और साथ ही, यह लो, मैं तुम्हें तुम्हारे देवत्वकी सिद्धिके लिये यह अनेक रूपोंवाली विविध यज्ञ-विज्ञानरूपी रत्नोंकी माला देता हूँ। इसे स्वीकार करो॥ १६॥

सम्बन्ध—*उस अग्निविद्याका फल बतलाते हुए यमराज कहते हैं—*

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाꣳ शान्तिमत्यन्तमेति॥ १७॥

त्रिणाचिकेतः=इस अग्निका (शास्त्रोक्त रीतिसे) तीन बार अनुष्ठान करनेवाला; **त्रिभिः सन्धिम् एत्य**=तीनों (ऋक्, साम, यजुर्वेद)-के साथ सम्बन्ध जोड़कर; **त्रिकर्मकृत्**=यज्ञ, दान और तपरूप तीनों कर्मोंको निष्कामभावसे करता रहनेवाला मनुष्य; **जन्ममृत्यू तरति**=जन्म-मृत्युसे तर जाता है; **ब्रह्मजज्ञम्**=(वह) ब्रह्मासे उत्पन्न सृष्टिके जाननेवाले; **ईड्यम् देवम्**=स्तवनीय इस अग्निदेवको; **विदित्वा**=जानकर तथा; **निचाय्य**=इसका निष्कामभावसे चयन करके; **इमाम् अत्यन्तम् शान्तिम् एति**=इस अनन्त शान्तिको पा जाता है (जो मुझको प्राप्त है)॥ १७॥

व्याख्या—इस अग्निका तीन बार अनुष्ठान करनेवाला पुरुष ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंसे सम्बन्ध जोड़कर, तीनों वेदोंके तत्त्व-रहस्यमें निष्णात होकर, निष्कामभावसे यज्ञ, दान और तपरूप तीनों कर्मोंको करता हुआ जन्म-मृत्युसे तर जाता है। वह ब्रह्मासे उत्पन्न सृष्टिको जाननेवाले स्तवनीय इस अग्निदेवको भलीभाँति जानकर इसका निष्कामभावसे चयन करके उस अनन्त शान्तिको प्राप्त हो जाता है, जो मुझको प्राप्त है॥ १७॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाꣳश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ १८॥

एतत् त्रयम्=ईंटोंके स्वरूप, संख्या और अग्नि-चयन-विधि—इन तीनों बातोंको; **विदित्वा**=जानकर; **त्रिणाचिकेतः**=तीन बार नाचिकेत-अग्निविद्याका अनुष्ठान करनेवाला तथा; **यः एवम्**=जो कोई भी इस प्रकार; **विद्वान्**=जाननेवाला पुरुष; **नाचिकेतम्**=इस नाचिकेत-अग्निका; **चिनुते**=चयन करता है; **सः मृत्युपाशान्**=वह मृत्यके पाशको; **पुरतः प्रणोद्य**=अपने सामने ही (मनुष्य-शरीरमें ही) काटकर; **शोकातिगः**=शोकसे पार होकर; **स्वर्गलोके मोदते**=स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है॥ १८॥

व्याख्या—किस आकारकी कैसी ईंटें हों और कितनी संख्यामें हों एवं किस प्रकारसे अग्निका चयन किया जाय—इन तीनों बातोंको जानकर जो विद्वान् तीन बार नाचिकेत अग्निविद्याका निष्कामभावसे अनुष्ठान करता है—अग्निका चयन करता है, वह देहपातसे पहले ही (जन्म-) मृत्युके पाशको तोड़कर, शोकरहित होकर अन्तमें स्वर्गलोकके (अविनाशी ऊर्ध्वलोकके) आनन्दका अनुभव करता है॥ १८॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व॥ १९॥

नचिकेतः=हे नचिकेता!; **एषः ते**=यह तुम्हें बतलायी हुई; **स्वर्ग्यः अग्निः**=स्वर्ग प्रदान करनेवाली अग्निविद्या है; **यम् द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः**=जिसको तुमने दूसरे वरसे माँगा था; **एतम् अग्निम्**=इस अग्निको (अबसे); **जनासः**=लोग; **तव एव**=तुम्हारे ही नामसे; **प्रवक्ष्यन्ति**=कहा करेंगे; **नचिकेतः**=हे नचिकेता!; **तृतीयम् वरम् वृणीष्व**=(अब तुम) तीसरा वर माँगो॥ १९॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं—नचिकेता! तुम्हें यह उसी स्वर्गकी साधनरूपा अग्निविद्याका उपदेश दिया गया है, जिसके लिये तुमने दूसरे वरमें याचना की थी। अबसे लोग तुम्हारे ही नामसे इस अग्निको पुकारा करेंगे। नचिकेता! अब तुम तीसरा वर माँगो॥ १९॥

सम्बन्ध—*नचिकेता तीसरा वर माँगता है—*

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥ २०॥

प्रेते मनुष्ये=मरे हुए मनुष्यके विषयमें; **या इयम्**=जो यह; **विचिकित्सा**=संशय है; **एके (आहुः) अयम्**

अस्ति इति=कोई तो ऐसा कहते हैं कि मरनेके बाद यह आत्मा रहता है; **च एके (आहुः) न अस्ति इति**=और कोई ऐसा कहते हैं कि नहीं रहता; **त्वया अनुशिष्टः**=आपके द्वारा उपदेश पाया हुआ; **अहम् एतत् विद्याम्**=मैं इसका निर्णय भलीभाँति समझ लूँ; **एषः वराणाम्**=यही तीनों वरोंमेंसे; **तृतीयः वरः**=तीसरा वर है॥ २०॥

व्याख्या—इस लोकके कल्याणके लिये पिताकी सन्तुष्टिका वर और परलोकके लिये स्वर्गके साधनरूप अग्निविज्ञानका वर प्राप्त करके अब नचिकेता आत्माके यथार्थ स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय जाननेके लिये यमराजके सामने दूसरे लोगोंके दो मत उपस्थित करके उसपर उनका अनुभूत विचार सुनना चाहता है। इसलिये नचिकेता कहता है कि भगवन्! मृत मनुष्यके सम्बन्धमें यह एक बड़ा सन्देह फैला हुआ है। कुछ लोग तो कहते हैं कि मृत्युके बाद भी आत्माका अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं, नहीं रहता। इस विषयमें आपका जो अनुभव हो, वह मुझे बतलाइये।* आप मुझे अपना अनुभूत विचार बतलायेंगे, तभी मैं इस रहस्यको भलीभाँति समझ पाऊँगा। बस, तीनों वरोंमेंसे यही मेरा अभीष्ट तीसरा वर है॥ २०॥

सम्बन्ध—*नचिकेताका महत्त्वपूर्ण प्रश्न सुनकर यमराजने मन-ही-मन उसकी प्रशंसा की। सोचा कि ऋषिकुमार बालक होनेपर भी बड़ा प्रतिभाशाली है, कैसे गोपनीय विषयको जानना चाहता है; परंतु आत्मतत्त्व उपयुक्त अधिकारीको ही बतलाना चाहिये। अनधिकारीके प्रति आत्मतत्त्वका उपदेश करना हानिकर होता है, अतएव पहले पात्र-परीक्षाकी आवश्यकता है। यों विचारकर यमराजने इस तत्त्वकी कठिनताका वर्णन करके नचिकेताको टालना चाहा और कहा—*

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम्॥ २१॥

नचिकेतः=हे नचिकेता!; **अत्र पुरा**=इस विषयमें पहले; **देवैः अपि**=देवताओंने भी; **विचिकित्सितम्**=संदेह किया था (परंतु उनकी भी समझमें नहीं आया); **हि एषः धर्मः अणुः न सुविज्ञेयम्**=क्योंकि यह विषय बड़ा सूक्ष्म है, सहज ही समझमें आनेवाला नहीं है (इसलिये); **अन्यम् वरम् वृणीष्व**=तुम दूसरा वर माँग लो; **मा मा उपरोत्सीः**=मुझपर दबाव मत डालो; **एनम् मा**=इस आत्मज्ञानसम्बन्धी वरको मुझे; **अतिसृज**=लौटा दो॥ २१॥

व्याख्या—नचिकेता! यह आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म विषय है। इसको समझना सहज नहीं है। पहले देवताओंको भी इस विषयमें सन्देह हुआ था। उनमें भी बहुत विचार-विनिमय हुआ था; परन्तु वे भी इसको जान नहीं पाये। अतएव तुम दूसरा वर माँग लो। मैं तुम्हें तीन वर देनेका वचन दे चुका हूँ, अतएव तुम्हारा ऋणी हूँ; पर तुम इस वरके लिये, जैसे महाजन ऋणीको दबाता है वैसे, मुझको मत दबाओ। इस आत्मतत्त्वविषयक वरको मुझे लौटा दो। इसके लिये मुझे छोड़ दो॥ २१॥

सम्बन्ध—*नचिकेता आत्मतत्त्वकी कठिनताका नाम सुनकर तनिक भी घबराया नहीं, न उसका उत्साह ही मन्द हुआ, वरं उसने और भी दृढ़ताके साथ कहा—*

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्॥ २२॥

---

* मृत्युके पश्चात् आत्माका अस्तित्व रहता है या नहीं, इस सम्बन्धमें नचिकेताको स्वयं कोई सन्देह नहीं है। पिताको दक्षिणामें जराजीर्ण गौएँ देते देखकर नचिकेताने स्पष्ट कहा था कि ऐसी गौओंका दान करनेवाले आनन्दरहित (अनन्दाः) नरकादि लोकोंको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार दूसरे वरमें नचिकेताने स्वर्गसुखोंका वर्णन करके स्वर्गप्राप्तिके साधनरूप अग्निविद्याके उपदेशकी प्रार्थना की थी। इससे सिद्ध है कि वह स्वर्ग और नरकमें विश्वास करता था। स्वर्ग-नरकादि लोकोंकी प्राप्ति मरनेके पश्चात् ही होती है। आत्माका अस्तित्व न हो तो ये लोक किसको प्राप्त हों। यहाँ इसीलिये नचिकेताने अपना मत न बताकर कहा है कि कुछ लोग मरनेके बाद आत्माका अस्तित्व मानते हैं और कुछ लोग नहीं मानते। यह प्रश्नका एक ऐसा सुन्दर प्रकार है कि जिसके उत्तरमें आत्माकी नित्य सत्ता, उसके स्वरूप, गुण और परमलक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनोंका विवरण अपने-आप ही आ जाता है। अतः यह प्रश्न आत्मज्ञानविषयक है, न कि आत्माके अस्तित्वमें सन्देहविषयक। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें नचिकेताका जो इतिहास मिलता है, उसमें तो नचिकेताने तीसरे वरमें पुनर्मृत्यु (जन्म-मृत्यु)-पर विजय पानेका—मुक्तिका साधन जानना चाहा है (**तृतीयं वृणीष्वेति। पुनर्मृत्योर्मेऽपचितिं ब्रूहि**)।

मृत्यो=हे यमराज!; **त्वम् यत् आत्थ**=आपने जो यह कहा कि; **अत्र किल देवैः अपि**=इस विषयपर देवताओंने भी; **विचिकित्सितम्**=विचार किया था (परंतु वे निर्णय नहीं कर पाये); **च न सुविज्ञेयम्**=और यह सुविज्ञेय भी नहीं है; **च त्वादृक्**=इसके सिवा आपके-जैसा; **अस्य वक्ता**=इस विषयका कहनेवाला भी; **अन्यः न लभ्यः**=दूसरा नहीं मिल सकता; (**अतः**=इसलिये मेरी समझमें तो;) **एतस्य तुल्यः**=इसके समान; **अन्यः कश्चित्**=दूसरा कोई भी; **वरः न**=वर नहीं है॥ २२॥

व्याख्या—हे मृत्यो! पूर्वकालमें देवताओंने भी जब इस विषयपर विचार-विनिमय किया था तथा वे भी इसे जान नहीं पाये थे और आप भी कहते हैं कि यह विषय सहज नहीं है, बड़ा ही सूक्ष्म है, तब यह तो सिद्ध ही है कि यह बड़े ही महत्त्वका विषय है और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयको समझानेवाला आपके समान अनुभवी वक्ता मुझे ढूँढ़नेपर भी कोई नहीं मिल सकता। आप कहते हैं, इसे छोड़कर दूसरा वर माँग लो। परन्तु मैं तो समझता हूँ कि इसकी तुलनाका दूसरा कोई वर है ही नहीं। अतएव कृपापूर्वक मुझे इसीका उपदेश कीजिये॥ २२॥

सम्बन्ध—*विषयकी कठिनतासे नचिकेता नहीं घबराया, वह अपने निश्चयपर ज्यों-का-त्यों दृढ़ रहा। इस एक परीक्षामें वह उत्तीर्ण हो गया। अब यमराजने दूसरी परीक्षाके रूपमें उसके सामने विभिन्न प्रकारके प्रलोभन रखनेकी बात सोचकर उससे कहते हैं—*

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥ २३॥

शतायुषः=सैकड़ों वर्षोंकी आयुवाले; **पुत्रपौत्रान्**=बेटे और पोतोंको (तथा); **बहून् पशून्**=बहुत-से गौ आदि पशुओंको (एवं); **हस्तिहिरण्यम्**=हाथी, सुवर्ण और; **अश्वान् वृणीष्व**=घोड़ोंको माँग लो; **भूमेः महत् आयतनम्**=भूमिके बड़े विस्तारवाले मण्डल (साम्राज्य)-को; **वृणीष्व**=माँग लो; **स्वयम् च**=तुम स्वयं भी; **यावत् शरदः**=जितने वर्षोंतक; **इच्छसि**=चाहो; **जीव**=जीते रहो॥ २३॥

व्याख्या—नचिकेता! तुम बड़े भोले हो। क्या करोगे इस वरको लेकर। तुम ग्रहण करो इन सुखकी विशाल सामग्रियोंको। इस सौ-सौ वर्ष जीनेवाले पुत्र-पौत्रादि बड़े परिवारको माँग लो। गौ आदि बहुत-से उपयोगी पशु, हाथी, सुवर्ण, घोड़े और विशाल भूमण्डलके महान् साम्राज्यको माँग लो और इन सबको भोगनेके लिये जितने वर्षोंतक जीनेकी इच्छा हो, उतने ही वर्षोंतक जीते रहो॥ २३॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥ २४॥

नचिकेतः=हे नचिकेता!; **वित्तम् चिरजीविकाम्**=धन, सम्पत्ति और अनन्त कालतक जीनेके साधनोंको; **यदि त्वम्**=यदि तुम; **एतत्तुल्यम्**=इस आत्मज्ञानविषयक वरदानके समान; **वरम् मन्यसे वृणीष्व**=वर मानते हो तो माँग लो; **च महाभूमौ**=और तुम इस पृथ्वीलोकमें; **एधि**=बड़े भारी सम्राट् बन जाओ; **त्वा कामानाम्**=(मैं) तुम्हें सम्पूर्ण भोगोंमेंसे; **कामभाजम्**=अति उत्तम भोगोंका पात्र; **करोमि**=बना देता हूँ॥ २४॥

व्याख्या—'नचिकेता! यदि तुम प्रचुर धन-सम्पत्ति, दीर्घजीवनके लिये उपयोगी सुख-सामग्रियाँ अथवा और भी जितने भोग मनुष्य भोग सकता है, उन सबको मिलाकर उस आत्मतत्त्व-विषयक वरके समान समझते हो तो इन सबको माँग लो। तुम इस विशाल भूमिके सम्राट् बन जाओ। मैं तुम्हें समस्त भोगोंको इच्छानुसार भोगनेवाला बनाये देता हूँ।' इस प्रकार यहाँ यमराजने वाक्चातुर्यसे आत्मतत्त्वका महत्त्व बढ़ाते हुए नचिकेताको विशाल भोगोंका प्रलोभन दिया॥ २४॥

सम्बन्ध—*इतनेपर भी नचिकेता अपने निश्चयपर अटल रहा, तब स्वर्गके दैवी भोगोंका प्रलोभन देते हुए यमराजने कहा—*

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाꣳश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥ २५॥

ये ये कामाः=जो-जो भोग; **मर्त्यलोके**=मनुष्यलोकमें; **दुर्लभाः**=दुर्लभ हैं; **सर्वान् कामान्**=उन सम्पूर्ण

भोगोंको; **छन्दतः प्रार्थयस्व**=इच्छानुसार माँग लो; **सरथाः सतूर्याः इमाः रामाः**=रथ और नाना प्रकारके बाजोंके सहित इन स्वर्गकी अप्सराओंको (अपने साथ ले जाओ); **मनुष्यैः ईदृशाः**=मनुष्योंको ऐसी स्त्रियाँ; **न हि लम्भनीयाः**=अलभ्य हैं; **मत्प्रत्ताभिः**=मेरे द्वारा दी हुई; **आभिः**=इन स्त्रियोंसे; **परिचारयस्व**=तुम अपनी सेवा कराओ; **नचिकेतः**=हे नचिकेता!; **मरणम्**=मरनेके बाद आत्माका क्या होता है; **मा अनुप्राक्षीः**=इस बातको मत पूछो!॥ २५॥

व्याख्या—नचिकेता! जो-जो भोग मृत्युलोकमें दुर्लभ हैं, उन सबको तुम अपने इच्छानुसार माँग लो। ये रथों और विविध प्रकारके वाद्योंसहित जो स्वर्गकी सुन्दरी रमणियाँ हैं, ऐसी रमणियाँ मनुष्योंमें कहीं नहीं मिल सकतीं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इनके लिये ललचाते रहते हैं। मैं इन सबको तुम्हें सहज ही दे रहा हूँ। तुम इन्हें ले जाओ और इनसे अपनी सेवा कराओ; परन्तु नचिकेता! आत्मतत्त्व-विषयक प्रश्न मत पूछो॥ २५॥

सम्बन्ध—*यमराज शिष्यपर स्वाभाविक ही दया करनेवाले महान् अनुभवी आचार्य हैं। इन्होंने अधिकारिपरीक्षाके साथ ही इस प्रकार भय और एकके बाद एक उत्तम भोगोंका प्रलोभन दिखाकर, जैसे खम्भेको हिला-हिलाकर दृढ़ किया जाता है, वैसे ही नचिकेताके वैराग्यसम्पन्न निश्चयको और भी दृढ़ किया। पहले कठिनताका भय दिखाया, फिर इस लोकके एक-से-एक बढ़कर भोगोंके चित्र उसके सामने रखे और अन्तमें स्वर्गलोकमें भी उसका वैराग्य करा देनेके लिये स्वर्गके दैवी भोगोंका चित्र उपस्थित किया और कहा कि इनको यदि तुम अपने उस आत्मतत्त्वसम्बन्धी वरके समान समझते हो तो इन्हें माँग लो। परन्तु नचिकेता तो दृढ़निश्चयी और सच्चा अधिकारी था। वह जानता था कि इस लोक और परलोकके बड़े-से-बड़े भोग-सुखकी आत्मज्ञानके सुखके किसी क्षुद्रतम अंशके साथ भी तुलना नहीं की जा सकती। अतएव उसने अपने निश्चयका युक्तिपूर्वक समर्थन करते हुए पूर्ण वैराग्ययुक्त वचनोंमें यमराजसे कहा—*

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥ २६॥

अन्तक=हे यमराज! (जिन भोगोंका आपने वर्णन किया वे); **श्वोभावा**=क्षणभङ्गुर भोग (और उनसे प्राप्त होनेवाले सुख); **मर्त्यस्य**=मनुष्यके; **सर्वेन्द्रियाणाम्**=अन्तःकरणसहित सम्पूर्ण इन्द्रियोंका; **यत् तेजः**=जो तेज है; **एतत्**=उसको; **जरयन्ति**=क्षीण कर डालते हैं; **अपि सर्वम्**= (इसके सिवा) समस्त; **जीवितम्**=आयु, चाहे वह कितनी भी बड़ी क्यों न हो; **अल्पम् एव**=अल्प ही है, इसलिये; **तव वाहाः**=ये आपके रथ आदि वाहन और; **नृत्यगीते**=ये अप्सराओंके नाच-गान; **तव एव**=आपके ही पास रहें (मुझे नहीं चाहिये)॥ २६॥

व्याख्या—हे सबका अन्त करनेवाले यमराज! आपने जिन भोग्य वस्तुओंकी महिमाके पुल बाँधे हैं, ये सभी क्षणभङ्गुर हैं। कलतक रहेंगी या नहीं, इसमें भी सन्देह है। इनके संयोगसे प्राप्त होनेवाला सुख वास्तवमें सुख ही नहीं है, वह तो दुःख ही है (गीता ५। २२)। ये भोग्यवस्तुएँ कोई लाभ तो देती ही नहीं, वरं मनुष्यकी इन्द्रियोंके तेज और धर्मको हरण कर लेती हैं। आपने जो दीर्घजीवन देना चाहा है, वह भी अनन्तकालकी तुलनामें अत्यन्त अल्प ही है। जब ब्रह्मा आदि देवताओंका जीवन भी अल्पकालका है—एक दिन उन्हें भी मरना पड़ता है, तब औरोंकी तो बात ही क्या है? अतएव मैं यह सब नहीं चाहता। ये आपके रथ, हाथी, घोड़े, ये रमणियाँ और इनके नाच-गान आप अपने ही पास रखें॥ २६॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव॥ २७॥

मनुष्यः=मनुष्य; **वित्तेन**=धनसे; **तर्पणीयः न**=कभी भी तृप्त किये जाने योग्य नहीं है; **चेत्**=जब कि (हमने); **त्वा अद्राक्ष्म**=आपके दर्शन पा लिये हैं, (तब); **वित्तम्**=धनको; **लप्स्यामहे**=(तो हम) पा ही लेंगे; (और) **त्वम् यावत्**=आप जबतक; **ईशिष्यसि**=शासन करते रहेंगे, तबतक तो; **जीविष्यामः**=हम जीते ही रहेंगे (इन सबको भी क्या माँगना है, अतः); **मे वरणीयः वरः तु**=मेरे माँगने लायक वर तो; **सः एव**=वह (आत्मज्ञान) ही है॥ २७॥

व्याख्या—आप जानते ही हैं, धनसे मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। आगमें घी-ईंधन डालनेसे जैसे आग जोरोंसे भड़कती है, उसी प्रकार धन और भोगोंकी प्राप्तिसे भोग-कामनाका और भी विस्तार होता है। वहाँ

तृप्ति कैसी? वहाँ तो दिन-रात अपूर्णता और अभावकी अग्निमें ही जलना पड़ता है। ऐसे दुःखमय धन और भोगोंको कोई भी बुद्धिमान् पुरुष नहीं माँग सकता। मुझे अपने जीवननिर्वाहके लिये जितने धनकी आवश्यकता होगी, उतना तो आपके दर्शनसे ही प्राप्त हो जायगा। रही दीर्घजीवनकी बात, सो जबतक मृत्युके पदपर आपका शासन है, तबतक मुझे मरनेका भी भय क्यों होने लगा। अतएव किसी भी दृष्टिसे दूसरा वर माँगना उचित नहीं मालूम होता। इसलिये मेरा प्रार्थनीय तो वह आत्मतत्त्व-विषयक वर ही है। मैं उसे लौटा नहीं सकता॥ २७॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार भोगोंकी तुच्छताका वर्णन करके अब नचिकेता अपने वरका महत्त्व बतलाता हुआ उसीको प्रदान करनेके लिये दृढ़तापूर्वक निवेदन करता है—*

अजीर्यतामृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत॥ २८॥

जीर्यन् मर्त्यः=यह मनुष्य जीर्ण होनेवाला और मरणधर्मा है; **प्रजानन्**=इस तत्त्वको भलीभाँति समझनेवाला; **क्वधःस्थः**=मनुष्यलोकका निवासी; **कः**=कौन (ऐसा) मनुष्य है (जो कि); **अजीर्यताम्**=बुढ़ापेसे रहित; **अमृतानाम्**=न मरनेवाले (आप-सदृश) महात्माओंका; **उपेत्य**=सङ्ग पाकर भी; **वर्णरतिप्रमोदान्**=(स्त्रियोंके) सौन्दर्य, क्रीड़ा और आमोद-प्रमोदका; **अभिध्यायन्**=बार-बार चिन्तन करता हुआ; **अतिदीर्घे**=बहुत कालतक; **जीविते**=जीवित रहनेमें; **रमेत**=प्रेम करेगा॥ २८॥

व्याख्या—हे यमराज! आप ही बताइये, भला आप-सरीखे अजर-अमर महात्मा देवताओंका दुर्लभ एवं अमोघ सङ्ग प्राप्त करके मृत्युलोकका जरामरणशील ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा जो स्त्रियोंके सौन्दर्य, क्रीड़ा और आमोद-प्रमोदमें आसक्त होकर उनकी ओर दृष्टिपात करेगा और इस लोकमें दीर्घकालतक जीवित रहनेमें आनन्द मानेगा?॥ २८॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥ २९॥

मृत्यो=हे यमराज!; **यस्मिन्**=जिस; **महति साम्पराये**=महान् आश्चर्यमय परलोकसम्बन्धी आत्मज्ञानके विषयमें; **इदम् विचिकित्सन्ति**=(लोग) यह शङ्का करते हैं कि यह आत्मा मरनेके बाद रहता है या नहीं; **(तत्र) यत्**=उसमें जो निर्णय है; **तत् नः ब्रूहि**=वह आप हमें बतलाइये; **यः अयम्**=जो यह; **गूढम् अनुप्रविष्टः वरः**=अत्यन्त गम्भीरताको प्राप्त हुआ वर है; **तस्मात्**=इससे; **अन्यम्**=दूसरा वर; **नचिकेताः**=नचिकेता; **न वृणीते**=नहीं माँगता॥ २९॥

व्याख्या—नचिकेता कहता है—हे यमराज! जिस आत्मतत्त्व-सम्बन्धी महान् ज्ञानके विषयमें लोग यह शङ्का करते हैं कि मरनेके बाद आत्माका अस्तित्व रहता है या नहीं, उसके सम्बन्धमें निर्णयात्मक जो आपका अनुभूत ज्ञान हो, मुझे कृपापूर्वक उसीका उपदेश कीजिये। यह आत्मतत्त्वसम्बन्धी वर अत्यन्त गूढ़ है—यह सत्य है; पर आपका शिष्य यह नचिकेता इसके अतिरिक्त दूसरा कोई वर नहीं चाहता!॥ २९॥

॥ प्रथम वल्ली समाप्त॥ १॥

[द्वितीय वल्ली]

सम्बन्ध—*इस प्रकार परीक्षा करके जब यमराजने समझ लिया कि नचिकेता दृढ़निश्चयी, परम वैराग्यवान् एवं निर्भीक है, अतः ब्रह्मविद्याका उत्तम अधिकारी है, तब ब्रह्मविद्याका उपदेश आरम्भ करनेके पहले उसका महत्त्व प्रकट करते हुए यमराज बोले—*

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥ १॥

श्रेयः=कल्याणका साधन; **अन्यत्**=अलग है; **उत**=और; **प्रेयः**=प्रिय लगनेवाले भोगोंका साधन; **अन्यत् एव**=अलग ही है; **ते**=वे; **नानार्थे**=भिन्न-भिन्न फल देनेवाले; **उभे**=दोनों साधन; **पुरुषम्**=मनुष्यको; **सिनीतः**=बाँधते हैं—अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं; **तयोः**=उन दोनोंमेंसे; **श्रेयः**=कल्याणके साधनको; **आददानस्य**=ग्रहण

करनेवालेका; **साधु भवति**=कल्याण होता है; **उ यः**=परंतु जो; **प्रेयः वृणीते**=सांसारिक उन्नतिके साधनको स्वीकार करता है; (**सः**=वह;) **अर्थात्**=यथार्थ लाभसे; **हीयते**=भ्रष्ट हो जाता है॥ १॥

व्याख्या—मनुष्य-शरीर अन्यान्य योनियोंकी भाँति केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही नहीं मिला है। इसमें मनुष्य भविष्यमें सुख देनेवाले साधनका अनुष्ठान भी कर सकता है। वेदोंमें सुखके साधन दो बताये गये हैं—(१) श्रेय अर्थात् सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छूटकर नित्य आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेका उपाय और (२) प्रेय अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, मकान, सम्मान, यश आदि इस लोककी और स्वर्गलोककी जितनी भी प्राकृत सुख-भोगकी सामग्रियाँ हैं, उनकी प्राप्तिका उपाय। इस प्रकार अपने-अपने ढंगसे मनुष्यको सुख पहुँचा सकनेवाले ये दोनों साधन मनुष्यको बाँधते हैं—उसे अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। अधिकांश लोग तो 'भोगोंमें प्रत्यक्ष और तत्काल सुख मिलता है' इस प्रतीतिके कारण उसका परिणाम सोचे-समझे बिना ही प्रेयकी ओर खिंच जाते हैं। परन्तु कोई-कोई भाग्यवान् मनुष्य भगवान्‌की दयासे प्राकृत भोगोंकी आपातरमणीयता एवं परिणामदुःखताका रहस्य जानकर उनकी ओरसे विरक्त हो श्रेयकी ओर आकर्षित हो जाता है। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमेंसे जो भगवान्‌की कृपाका पात्र होकर श्रेयको अपना लेता है और तत्परताके साथ उसके साधनमें लग जाता है, उसका तो सब प्रकारसे कल्याण हो जाता है। वह सदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंसे सर्वथा छूटकर अनन्त असीम आनन्दस्वरूप परमात्माको पा लेता है। परन्तु जो सांसारिक सुखके साधनोंमें लग जाता है, वह अपने मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्माकी प्राप्तिरूप यथार्थ प्रयोजनको सिद्ध नहीं कर पाता; इसलिये उसे आत्यन्तिक और नित्य सुख नहीं मिलता। उसे तो भ्रमवश सुखरूप प्रतीत होनेवाले वे अनित्य भोग मिलते हैं, जो वास्तवमें दुःखरूप ही हैं। अतः वह वास्तविक सुखसे भ्रष्ट हो जाता है॥ १॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥ २॥

श्रेयः च प्रेयः च=श्रेय और प्रेय—ये दोनों ही; **मनुष्यम् एतः**=मनुष्यके सामने आते हैं; **धीरः**=बुद्धिमान् मनुष्य; **तौ**=उन दोनोंके स्वरूपपर; **सम्परीत्य**=भलीभाँति विचार करके; **विविनक्ति**=उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है; (और) **धीरः**=वह श्रेष्ठबुद्धि मनुष्य; **श्रेयः हि**=परम कल्याणके साधनको ही; **प्रेयसः**=भोग-साधनकी अपेक्षा; **अभिवृणीते**=श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है (परंतु); **मन्दः**=मन्दबुद्धिवाला मनुष्य; **योगक्षेमात्**=लौकिक योगक्षेमकी इच्छासे; **प्रेयः वृणीते**=भोगोंके साधनरूप प्रेयको अपनाता है॥ २॥

व्याख्या—अधिकांश मनुष्य तो पुनर्जन्ममें विश्वास न होनेके कारण इस विषयमें विचार ही नहीं करते, वे भोगोंमें आसक्त होकर अपने देवदुर्लभ मनुष्य-जीवनको पशुवत् भोगोंके भोगनेमें ही समाप्त कर देते हैं। किंतु जिनका पुनर्जन्ममें और परलोकमें विश्वास है, उन विचारशील मनुष्योंके सामने जब ये श्रेय और प्रेय दोनों आते हैं, तब वे इन दोनोंके गुण-दोषोंपर विचार करके दोनोंको पृथक्-पृथक् समझनेकी चेष्टा करते हैं। इनमें जो श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न होता है, वह तो दोनोंके तत्त्वको पूर्णतया समझकर नीर-क्षीर-विवेकी हंसकी तरह प्रेयकी उपेक्षा करके श्रेयको ही ग्रहण करता है। परंतु जो मनुष्य अल्पबुद्धि है, जिसकी बुद्धिमें विवेकशक्तिका अभाव है, वह श्रेयके फलमें अविश्वास करके प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले लौकिक योगक्षेमकी सिद्धिके लिये प्रेयको अपनाता है; वह इतना ही समझता है कि जो कुछ भोगपदार्थ प्राप्त हैं, वे सुरक्षित बने रहें और जो अप्राप्त हैं, वे प्रचुरमात्रामें मिल जायँ। यही योगक्षेम है॥ २॥

सम्बन्ध—*परमात्माकी प्राप्तिके साधनरूप श्रेयकी प्रशंसा करके अब यमराज साधारण मनुष्योंसे नचिकेताकी विशेषता दिखलाते हुए उसके वैराग्यकी प्रशंसा करते हैं—*

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाꣳश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।
नैताꣳ सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः॥ ३॥

नचिकेतः=हे नचिकेता! (उन्हीं मनुष्योंमें); **सः त्वम्**=तुम (ऐसे निःस्पृह हो कि); **प्रियान् च**=प्रिय लगनेवाले और; **प्रियरूपान्**=अत्यन्त सुन्दर रूपवाले; **कामान्**=इस लोक और परलोकके समस्त भोगोंको;

अभिध्यायन्=भलीभाँति सोच-समझकर; **अत्यस्त्राक्षीः**=तुमने छोड़ दिया; **एताम् वित्तमयीम् सृङ्काम्**=इस सम्पत्तिरूप शृङ्खला (बेड़ी)-को; **न अवाप्तः**=(तुम) नहीं प्राप्त हुए (इसके बन्धनमें नहीं फँसे); **यस्याम्**=जिसमें; **बहवः मनुष्याः**=बहुत-से मनुष्य; **मज्जन्ति**=फँस जाते हैं॥ ३॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं—'हे नचिकेता! तुम्हारी परीक्षा करके मैंने अच्छी तरह देख लिया कि तुम बड़े बुद्धिमान्, विवेकी तथा वैराग्यसम्पन्न हो। अपनेको बहुत बड़े चतुर, विवेकी और तार्किक माननेवाले लोग भी जिस चमक-दमकवाली सम्पत्तिके मोहजालमें फँस जाया करते हैं, उसे भी तुमने स्वीकार नहीं किया। मैंने बड़ी ही लुभावनी भाषामें तुम्हें बार-बार पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़े, गौएँ, धन, सम्पत्ति, भूमि आदि अनेकों दुष्प्राप्य और लोभनीय भोगोंका प्रलोभन दिया; इतना ही नहीं, स्वर्गके दिव्य भोगों और अप्रतिम सुन्दरी स्वर्गीय रमणियोंके चिर-भोगसुखका लालच दिया; परंतु तुमने सहज ही उन सबकी उपेक्षा कर दी। अतः तुम अवश्य ही परमात्मतत्त्वका श्रवण करनेके सर्वोत्तम अधिकारी हो'॥ ३॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त॥ ४॥

या अविद्या=जो कि अविद्या; **च विद्या इति ज्ञाता**=और विद्या नामसे विख्यात हैं; **एते**=ये दोनों; **दूरम् विपरीते**=परस्पर अत्यन्त विपरीत (और); **विषूची**=भिन्न-भिन्न फल देनेवाली हैं; **नचिकेतसम्**=तुम नचिकेताको; **विद्याभीप्सिनम् मन्ये**=मैं विद्याका ही अभिलाषी मानता हूँ, (क्योंकि); **त्वा बहवः कामाः**=तुमको बहुत-से भोग; **न अलोलुपन्त**=(किसी प्रकार भी) नहीं लुभा सके॥ ४॥

व्याख्या—ये अविद्या और विद्या नामसे प्रसिद्ध दो साधन पृथक्-पृथक् फल देनेवाले हैं और परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं। जिसकी भोगोंमें आसक्ति है, वह कल्याण-साधनमें आगे नहीं बढ़ सकता और जो कल्याण-मार्गका पथिक है, वह भोगोंकी ओर दृष्टि नहीं डालता। वह सब प्रकारके भोगोंको दुःखरूप मानकर उनका परित्याग कर देता है। हे नचिकेता! मैं मानता हूँ कि तुम विद्याके ही अभिलाषी हो; क्योंकि बहुत-से बड़े-बड़े भोग भी तुम्हारे मनमें किञ्चिन्मात्र भी लोभ नहीं उत्पन्न कर सके॥ ४॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ ५॥

अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः=अविद्याके भीतर स्थित होकर (भी); **स्वयं धीराः**=अपने-आपको बुद्धिमान् (और); **पण्डितम् मन्यमानाः**=विद्वान् माननेवाले; **मूढ़ाः**=(भोगकी इच्छा करनेवाले) वे मूर्खलोग; **दन्द्रम्यमाणाः**=नाना योनियोंमें चारों ओर भटकते हुए; **(तथा) परियन्ति**=ठीक वैसे ही ठोकरें खाते भटकते रहते हैं; **यथा**=जैसे; **अन्धेन एव नीयमानाः**=अन्धे मनुष्यके द्वारा चलाये जानेवाले; **अन्धाः**=अन्धे (अपने लक्ष्यतक न पहुँचकर इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते हैं)॥ ५॥

व्याख्या—जब अन्धे मनुष्यको मार्ग दिखलानेवाला भी अन्धा ही मिल जाता है, तब जैसे वह अपने अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच पाता, बीचमें ही ठोकरें खाता भटकता है और काँटे-कंकड़ोंसे बिंधकर या गहरे गड्ढे आदिमें गिरकर अथवा किसी चट्टान, दीवाल और पशु आदिसे टकराकर नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। वैसे ही उस मूर्खको भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विविध दुःखपूर्ण योनियोंमें एवं नरकादिमें प्रवेश करके अनन्त जन्मोंतक अनन्त यन्त्रणाओंका भोग करना पड़ता है, जो अपने-आपको ही बुद्धिमान् और विद्वान् समझता है, विद्या-बुद्धिके मिथ्याभिमानमें शास्त्र और महापुरुषोंके वचनोंकी कुछ भी परवा न करके उनकी अवहेलना करता और प्रत्यक्ष सुखरूप प्रतीत होनेवाले भोगोंको भोग करनेमें तथा उनके उपार्जनमें ही निरन्तर संलग्न रहकर मनुष्य-जीवनका अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करता रहता है॥ ५॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥ ६॥

वित्तमोहेन मूढम्=इस प्रकार सम्पत्तिके मोहसे मोहित; **प्रमाद्यन्तम् बालम्**=निरन्तर प्रमाद करनेवाले अज्ञानीको; **साम्परायः**=परलोक; **न प्रतिभाति**=नहीं सूझता; **अयम् लोकः**=वह समझता है कि यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला लोक ही सत्य है; **परः न अस्ति**=इसके सिवा दूसरा (स्वर्ग-नरक आदि लोक) कुछ भी नहीं है; **इति मानी**=इस प्रकार माननेवाला अभिमानी मनुष्य; **पुनः पुनः**=बार-बार; **मे वशम्**=मेरे (यमराजके) वशमें; **आपद्यते**=आता है॥ ६॥

व्याख्या—इस प्रकार मनुष्य-जीवनके महत्त्वको नहीं समझनेवाला अभिमानी मनुष्य सांसारिक भोग-सम्पत्तिकी प्राप्तिके साधनरूप धनादिके मोहसे मोहित हुआ रहता है; अतएव भोगोंमें आसक्त होकर वह प्रमादपूर्वक मनमाना आचरण करने लगता है। उसे परलोक नहीं सूझता। उसके अन्तःकरणमें इस प्रकारके विचार उत्पन्न ही नहीं होते कि मरनेके बाद मुझे अपने समस्त कर्मोंका फल भोगनेके लिये बाध्य होकर बारम्बार विविध योनियोंमें जन्म लेना पड़ेगा। वह मूर्ख समझता है कि बस, जो कुछ यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है, यही लोक है। इसीकी सत्ता है। यहाँ जितना विषय-सुख भोग लिया जाय, उतनी ही बुद्धिमानी है। इसके आगे क्या है? परलोकको किसने देखा है? परलोक तो लोगोंकी कल्पनामात्र है, इत्यादि। इस प्रकारकी मान्यता रखनेवाला मनुष्य बारम्बार यमराजके चंगुलमें पड़ता है और वे उसके कर्मानुसार उसे नाना योनियोंमें ढकेलते रहते हैं। उसके जन्म-मरणका चक्र नहीं छूटता॥ ६॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार विषयासक्त, प्रत्यक्षवादी मूर्खोंकी निन्दा करके अब उस आत्मतत्त्वकी और उसको जानने, समझने तथा वर्णन करनेवाले पुरुषोंकी दुर्लभताका वर्णन करते हैं—*

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७॥

यः बहुभिः=जो (आत्मतत्त्व) बहुतोंको तो; **श्रवणाय अपि**=सुननेके लिये भी; **न लभ्यः**=नहीं मिलता; **यम्**=जिसको; **बहवः**=बहुत-से लोग; **शृण्वन्तः अपि**=सुनकर भी; **न विद्युः**=नहीं समझ सकते; **अस्य**=ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्त्वका; **वक्ता आश्चर्यः**=वर्णन करनेवाला महापुरुष आश्चर्यमय है (बड़ा दुर्लभ है); **लब्धा कुशलः**=उसे प्राप्त करनेवाला भी बड़ा कुशल (सफलजीवन) कोई एक ही होता है; **कुशलानुशिष्टः**=और जिसे तत्त्वकी उपलब्धि हो गयी है, ऐसे ज्ञानी महापुरुषके द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ; **ज्ञाता**=आत्मतत्त्वका ज्ञाता भी; **आश्चर्यः**=आश्चर्यमय है (परम दुर्लभ है)॥ ७॥

व्याख्या—आत्मतत्त्वकी दुर्लभता बतलानेके हेतुसे यमराजने कहा—नचिकेता! आत्मतत्त्व कोई साधारण-सी बात नहीं है। जगत्में अधिकांश मनुष्य तो ऐसे हैं—जिनको आत्मकल्याणकी चर्चातक सुननेको नहीं मिलती। वे ऐसे वातावरणमें रहते हैं कि जहाँ प्रातःकाल जागनेसे लेकर रात्रिको सोनेतक केवल विषय-चर्चा ही हुआ करती है, जिससे उनका मन आठों पहर विषय-चिन्तनमें डूबा रहता है। उनके मनमें आत्मतत्त्व सुनने-समझनेकी कभी कल्पना ही नहीं आती और भूले-भटके यदि ऐसा कोई प्रसङ्ग आ जाता है तो उन्हें विषय-सेवनसे अवकाश नहीं मिलता। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो सुनना-समझना उत्तम समझकर सुनते तो हैं, परंतु उनके विषयाभिभूत मनमें उसकी धारणा नहीं हो पाती अथवा मन्दबुद्धिके कारण वे उसे समझ नहीं पाते। जो तीक्ष्णबुद्धि पुरुष समझ लेते हैं, उनमें भी ऐसे आश्चर्यमय महापुरुष कोई विरले ही होते हैं, जो उस आत्मतत्त्वका यथार्थरूपसे वर्णन करनेवाले समर्थ वक्ता हों। एवं ऐसे पुरुष भी कोई एक ही होते हैं जिन्होंने आत्मतत्त्वको प्राप्त करके जीवनकी सफलता सम्पन्न की हो और भलीभाँति समझाकर वर्णन करनेवाले सफलजीवन अनुभवी आत्मदर्शी आचार्यके द्वारा उपदेश प्राप्त करके उसके अनुसार मनन-निदिध्यासन करते-करते तत्त्वका साक्षात्कार करनेवाले पुरुष भी जगत्में कोई विरले ही होते हैं। अतः इसमें सर्वत्र ही दुर्लभता है॥ ७॥

सम्बन्ध—*अब आत्मज्ञानकी दुर्लभताका कारण बताते हैं—*

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥ ८॥

अवरेण नरेण प्रोक्तः=अल्पज्ञ मनुष्यके द्वारा बतलाये जानेपर; **बहुधा चिन्त्यमानः**= (और उसके अनुसार) बहुत प्रकारसे चिन्तन किये जानेपर भी; **एषः**=यह आत्मतत्त्व; **सुविज्ञेयः**=सहज ही समझमें आ जाय; **न**=ऐसा

नहीं है; **अनन्यप्रोक्ते**=किसी दूसरे ज्ञानी पुरुषके द्वारा उपदेश न किये जानेपर; **अत्र गतिः न अस्ति**=इस विषयमें मनुष्यका प्रवेश नहीं होता; **हि अणुप्रमाणात्**=क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुसे भी; **अणीयान्**=अधिक सूक्ष्म है; **अतर्क्यम्**=(इसलिये) तर्कसे अतीत है॥ ८॥

व्याख्या—प्रकृतिपर्यन्त जो भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, यह आत्मतत्त्व उससे भी सूक्ष्म है। यह इतना गहन है कि जबतक इसे यथार्थरूपसे समझानेवाले कोई महापुरुष नहीं मिलते, तबतक मनुष्यका इसमें प्रवेश पाना अत्यन्त ही कठिन है। अल्पज्ञ—साधारण ज्ञानवाले मनुष्य यदि इसे बतलाते हैं और उसके अनुसार यदि कोई विविध प्रकारसे इसके चिन्तनका अभ्यास करता है तो उसका आत्मज्ञानरूपी फल नहीं होता। आत्मतत्त्व तनिक-सा भी समझमें नहीं आता। न यह ऐसा ही है कि दूसरेसे सुने बिना केवल अपने-आप तर्क-वितर्कयुक्त विचार करनेसे समझमें आ जाय। सुनना आवश्यक है; पर सुनना उनसे है, जो इसे भलीभाँति जाननेवाले महापुरुष हों। तभी इस तर्कसे सर्वथा अतीत विषयमें जानकारी हो सकती है॥ ८॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा॥ ९॥

प्रेष्ठ=हे प्रियतम्!; **याम् त्वम् आपः**=जिसको तुमने पाया है; **एषा मतिः**=यह बुद्धि; **तर्केण न आपनेया**=तर्कसे नहीं मिल सकती (यह तो); **अन्येन प्रोक्ता एव**=दूसरेके द्वारा कही हुई ही; **सुज्ञानाय**=आत्मज्ञानमें निमित्त; **(भवति**=होती है;) **बत**=सचमुच ही; (तुम) **सत्यधृतिः**=उत्तम धैर्यवाले; **असि**=हो; **नचिकेतः**=हे नचिकेता! (हम चाहते हैं कि); **त्वादृक्**=तुम्हारे-जैसे ही; **प्रष्टा**=पूछनेवाले; **नः भूयात्**=हमें मिला करें॥ ९॥

व्याख्या—नचिकेताकी प्रशंसा करते हुए यमराज फिर कहते हैं कि हे प्रियतम! तुम्हारी इस पवित्र मति—निर्मल निष्ठाको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। ऐसी निष्ठा तर्कसे कभी नहीं मिल सकती। यह तो तभी उत्पन्न होती है, जब भगवत्कृपासे किसी महापुरुषका सङ्ग प्राप्त होता है और उनके द्वारा लगातार परमात्माके महत्त्वका विशद विवेचन सुननेका सौभाग्य मिलता है। ऐसी निष्ठा ही मनुष्यको आत्मज्ञानके लिये प्रयत्न करनेमें प्रवृत्त करती है। इतना प्रलोभन दिये जानेपर तुम अपनी निष्ठापर दृढ़ रहे—इससे यह सिद्ध है कि वस्तुतः तुम सच्ची धारणासे सम्पन्न हो। नचिकेता! हमें तुम-जैसे ही पूछनेवाले जिज्ञासु मिला करें॥ ९॥

सम्बन्ध—*अब यमराज अपने उदाहरणसे निष्कामभावकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—*

जानाम्यहꣳ शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्॥ १०॥

अहम् जानामि=मैं जानता हूँ कि; **शेवधिः**=कर्मफलरूप निधि; **अनित्यम् इति**=अनित्य है; **हि अध्रुवैः**=क्योंकि अनित्य (विनाशशील) वस्तुओंसे; **तत् ध्रुवम्**=वह नित्य पदार्थ (परमात्मा); **न हि प्राप्यते**=नहीं मिल सकता; **ततः**=इसलिये; **मया**=मेरे द्वारा (कर्तव्यबुद्धिसे); **अनित्यैः द्रव्यैः**=अनित्य पदार्थोंके द्वारा; **नाचिकेतः**=नाचिकेत नामक; **अग्निः चितः**=अग्निका चयन किया गया (अनित्य भोगोंकी प्राप्तिके लिये नहीं, अतः उस निष्कामभावकी अपूर्व शक्तिसे मैं); **नित्यम्**=नित्य वस्तु परमात्माको; **प्राप्तवान्**=प्राप्त हो गया; **अस्मि**=हूँ॥ १०॥

व्याख्या—नचिकेता! मैं इस बातको भलीभाँति जानता हूँ कि कर्मोंके फलस्वरूप इस लोक और परलोकके भोगसमूहकी जो निधि मिलती है, वह चाहे कितनी ही महान् क्यों न हो, एक दिन उसका विनाश निश्चित है; अतएव वह अनित्य है और यह सिद्ध है कि अनित्य साधनोंसे नित्य पदार्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस रहस्यको जानकर ही मैंने नाचिकेत अग्निके चयनादिरूपसे जो कुछ यज्ञादि कर्म अनित्य वस्तुओंके द्वारा किये, सब-के-सब कामना और आसक्तिसे रहित होकर केवल कर्तव्यबुद्धिसे किये। इस निष्कामभावकी

ही यह महिमा है कि अनित्य पदार्थोंके द्वारा यजन करके | भी मैंने नित्य सुखरूप परमात्माको प्राप्त कर लिया* ॥ १० ॥

सम्बन्ध—*नचिकेतामें वह निष्कामभाव पूर्णरूपसे है, इसलिये यमराज उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—*

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः ॥ ११ ॥

नचिकेतः=हे नचिकेता!; **कामस्य आप्तिम्**=जिसमें सब प्रकारके भोग मिल सकते हैं; **जगतः प्रतिष्ठाम्**=जो जगत्का आधार; **क्रतोः अनन्त्यम्**=यज्ञका चिरस्थायी फल; **अभयस्य पारम्**=निर्भयताकी अवधि और; **स्तोममहत्**=स्तुति करनेयोग्य एवं महत्त्वपूर्ण है (तथा); **उरुगायम्**=वेदोंमें जिसके गुण नाना प्रकारसे गाये गये हैं; **प्रतिष्ठाम्**=(और) जो दीर्घकालतककी स्थितिसे सम्पन्न है, ऐसे स्वर्गलोकको; **दृष्ट्वा धृत्या**=देखकर भी तुमने धैर्यपूर्वक; **अत्यस्त्राक्षीः**=उसका त्याग कर दिया [**अतः**=इसलिये मैं समझता हूँ कि]; **धीरः (असि)**=तुम बहुत ही बुद्धिमान् हो ॥ ११ ॥

व्याख्या—नचिकेता! तुम सब प्रकारसे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न और निष्काम हो। मैंने तुम्हारे सामने वरदानके रूपमें उस स्वर्गलोकको रखा, जो सब प्रकारके भोगोंसे परिपूर्ण, जगत्का आधारस्वरूप, यज्ञादि शुभकर्मोंका अन्तरहित फल, सब प्रकारके दुःख और भयसे रहित, स्तुति करनेयोग्य और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वेदोंने भाँति-भाँतिसे उसकी शोभाके गुणगान किये हैं और वह दीर्घकालतक स्थित रहनेवाला है; तुमने उसके महत्त्वको समझकर भी बड़े धैर्यके साथ उसका परित्याग कर दिया, तुम्हारा मन तनिक भी उसमें आसक्त नहीं हुआ; तुम अपने निश्चयपर दृढ़ और अटल रहे। यह साधारण बात नहीं है। इसलिये मैं यह मानता हूँ कि तुम बड़े ही बुद्धिमान्, अनासक्त और आत्मतत्त्वको जाननेके अधिकारी हो† ॥ ११ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार नचिकेताके निष्कामभावको देखकर यमराजने निश्चय कर लिया कि यह परमात्माके तत्त्वज्ञानका यथार्थ अधिकारी है; अतः उसके अन्तःकरणमें परब्रह्म पुरुषोत्तमके तत्त्वकी जिज्ञासा उत्पन्न करनेके लिये यमराज अब दो मन्त्रोंमें परब्रह्म परमात्माकी महिमाका वर्णन करते हैं—*

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

गूढम्=जो योगमायाके पर्देमें छिपा हुआ; **अनुप्रविष्टम्**=सर्वव्यापी; **गुहाहितम्**=सबके हृदयरूप गुफामें स्थित (अतएव); **गह्वरेष्ठम्**=संसाररूप गहन वनमें रहनेवाला; **पुराणम्**=सनातन है, ऐसे; **तम् दुर्दर्शम् देवम्**=उस कठिनतासे देखे जानेवाले परमात्मदेवको; **धीरः**=शुद्ध बुद्धियुक्त साधक; **अध्यात्मयोगाधिगमेन**=अध्यात्मयोगकी प्राप्तिके द्वारा; **मत्वा**=समझकर; **हर्षशोकौ जहाति**=हर्ष और शोकको त्याग देता है ॥ १२ ॥

व्याख्या—यह सम्पूर्ण जगत् एक अत्यन्त दुर्गम गहन वनके सदृश है, परंतु यह परब्रह्म परमेश्वरसे परिपूर्ण है। वह सर्वव्यापी इसमें सर्वत्र प्रविष्ट है (गीता ९।४)। वह सबके हृदयरूपी गुफामें स्थित है। (गीता १३।१८; १५।१५; १८।६१)। इस प्रकार नित्य साथ रहनेपर भी लोग उसे सहजमें देख नहीं पाते; क्योंकि वह अपनी योगमायाके

---

* कुछ आदरणीय महानुभावोंने इसका यह अर्थ किया है—

मैं जानता हूँ कि कर्मफलरूप निधि अनित्य है; क्योंकि अनित्य साधनोंसे परमात्मारूपी नित्य निधि नहीं मिल सकती। यह जानते हुए भी मैंने स्वर्गके साधनभूत नाचिकेत अग्निका अनित्य पदार्थोंके द्वारा चयन किया था; उसीसे मैंने अधिकारसम्पन्न होकर यह आपेक्षिक नित्य (दूसरे पदोंकी अपेक्षा अधिक कालतक रहनेवाला तथा श्रेष्ठ) यमराजका पद प्राप्त किया।

† (१) इसका अर्थ एक आदरणीय महानुभाव इस प्रकार करते हैं—

नचिकेता! तुमने उस परमपदार्थ परमात्माके सम्मुख जगत्की चरम सीमाके भोग, प्रतिष्ठा, यज्ञका अनन्त फलरूप हिरण्यगर्भका पद, अभयकी मर्यादा (चिरकालस्थायी दीर्घजीवन), स्तुत्य और महान् अणिमादि ऐश्वर्य, शुभफल और अत्युत्तम गति—इन सभीको हेय समझकर धैर्यके द्वारा त्याग दिया है। इसलिये तुम बड़े ही बुद्धिमान् हो।

(२) एक दूसरे महानुभावने इसका अर्थ यों किया है—

जहाँ कामनाकी परिसमाप्ति हो जाती है, जो जगत्का आधार है, जहाँ ज्ञानकी अनन्तता है, जो अभयकी सीमा है, जो सबके द्वारा स्तुतिके योग्य है, जो सबसे महान् है, जिसकी सब स्तुति करते हैं और जो आप ही अपनी प्रतिष्ठा है, उस परमात्माको देखकर—उसको सामने रखकर बड़े धैर्यके साथ तुमने इस अनित्य निधिका त्याग कर दिया है; इसलिये तुम बड़े बुद्धिमान् हो।

पर्देमें छिपा है (गीता ७। २५), इसलिये अत्यन्त गुप्त है। उसके दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं। जो शुद्ध-बुद्धिसम्पन्न साधक अपने मन-बुद्धिको नित्य निरन्तर उसके चिन्तनमें संलग्न रखता है, वह उस सनातन देवको प्राप्त करके सदाके लिये हर्ष-शोकसे रहित हो जाता है। उसके अन्तःकरणमेंसे हर्ष-शोकादिके विकार समूल नष्ट हो जाते हैं* ॥ १२ ॥

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयꣳ हि लब्ध्वा विवृतꣳ सद्म नचिकेतसं मन्ये॥ १३ ॥

मर्त्यः=मनुष्य (जब); **एतत्**=इस; **धर्म्यम्**=धर्ममय (उपदेश)-को; **श्रुत्वा**=सुनकर; **सम्परिगृह्य**=भलीभाँति ग्रहण करके; **प्रवृह्य**=(और) उसपर विवेकपूर्वक विचार करके; **एतम्**=इस; **अणुम्**=सूक्ष्म आत्मतत्त्वको; **आप्य**=जानकर अनुभव कर लेता है, (तब); **सः**=वह; **मोदनीयम्**=आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको; **लब्ध्वा**=पाकर; **मोदते हि**=आनन्दमें ही मग्न हो जाता है; **नचिकेतसम्**=तुम नचिकेताके लिये; **विवृतम् सद्म मन्ये**=(मैं) परमधामका द्वार खुला हुआ मानता हूँ॥ १३ ॥

व्याख्या—इस अध्यात्मविषयक धर्ममय उपदेशको पहले तो अनुभवी महापुरुषके द्वारा अतिशय श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिये, सुनकर उसका मनन करना चाहिये। तदनन्तर एकान्तमें उसपर विचार करके बुद्धिमें उसको स्थिर करना चाहिये। इस प्रकार साधन करनेपर जब मनुष्यको आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है अर्थात् जब वह आत्माको तत्त्वसे समझ लेता है, तब आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है। उस आनन्दके महान् समुद्रको पाकर वह उसमें निमग्न हो जाता है। हे नचिकेता! तुम्हारे लिये उस परमधामका द्वार खुला हुआ है। तुमको वहाँ जानेसे कोई रोक नहीं सकता। तुम ब्रह्मप्राप्तिके उत्तम अधिकारी हो, ऐसा मैं मानता हूँ॥ १३ ॥

सम्बन्ध—*यमराजके मुखसे परब्रह्म पुरुषोत्तमकी महिमा सुनकर और अपनेको उसका अधिकारी जानकर नचिकेताके मनमें परमात्मतत्त्वकी जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। साथ ही उसे यमराजके द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर साधु-सम्मत सङ्कोच भी हुआ। इसलिये उसने यमराजसे बीचमें ही पूछा—*

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद॥ १४॥

यत् तत्=जिस उस परमेश्वरको; **धर्मात् अन्यत्र**=धर्मसे अतीत; **अधर्मात् अन्यत्र**=अधर्मसे भी अतीत; **च**=तथा; **अस्मात् कृताकृतात्**=इस कार्य और कारणरूप सम्पूर्ण जगत्से भी; **अन्यत्र च**=भिन्न और; **भूतात् भव्यात्**=भूत, वर्तमान एवं भविष्यत्—तीनों कालोंसे तथा इनसे सम्बन्धित पदार्थोंसे भी; **अन्यत्र**=पृथक्; **पश्यसि**=(आप) जानते हैं; **तत्**=उसे; **वद**=बतलाइये॥ १४॥

व्याख्या—नचिकेता कहता है—भगवन्! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो धर्म और अधर्मके सम्बन्धसे रहित, कार्य-कारणरूप प्रकृतिसे पृथक् एवं भूत, वर्तमान और भविष्यत्—इन सबसे भिन्न जिस परमात्मतत्त्वको आप जानते हैं, उसे मुझको बतलाइये† ॥ १४ ॥

सम्बन्ध—*नचिकेताके इस प्रकार पूछनेपर यमराज उस ब्रह्मतत्त्वके वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करते हुए उपदेश आरम्भ करते हैं—*

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ १५ ॥

---

* (१) कुछ आदरणीय महानुभावोंने इसका अर्थ यों किया है कि—

'उस दुर्दर्श, शब्दादि प्राकृत विषयविकाररूप विज्ञानसे छिपे हुए, बुद्धिमें स्थित, अनेक अनर्थोंसे व्याप्त देहमें स्थित, चिरन्तन—पुरातन देवको जो अध्यात्मयोगकी प्राप्तिके द्वारा जान लेता है, वह धीर पुरुष हर्ष-शोकका परित्याग कर देता है।'

(२) प्रातःस्मरणीय भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्यजीने भी ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें इस प्रकरणको परमात्मविषयक माना है ('प्रकरणं चेदं परमात्मनः'—देखिये ब्रह्मसूत्र अध्याय १ पा० २, के १२वें सूत्रका भाष्य)।

† भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्यजीने इस प्रकरणको भी अपने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें परमेश्वरविषयक ही माना है ('पृष्टं चेह ब्रह्म'—देखिये ब्रह्मसूत्र अध्याय १ पा० ३ के २४वें सूत्रका भाष्य)।

सर्वे वेदाः=सम्पूर्ण वेद; **यत् पदम्**=जिस परमपदका; **आमनन्ति**=बारम्बार प्रतिपादन करते हैं; **च**=और; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **तपांसि**=तप; **यत्**=जिस पदका; **वदन्ति**=लक्ष्य कराते हैं अर्थात् वे जिसके साधन हैं; **यत् इच्छन्तः**=जिसको चाहनेवाले साधकगण; **ब्रह्मचर्यम्**=ब्रह्मचर्यका; **चरन्ति**=पालन करते हैं; **तत् पदम्**=वह पद; **ते**=तुम्हें; **संग्रहेण**=संक्षेपसे; **ब्रवीमि**=(मैं) बतलाता हूँ; (वह है) **ओम्**=ओम्; **इति**=ऐसा; **एतत्**=यह (एक अक्षर) ॥ १५ ॥

व्याख्या—यमराज यहाँ परब्रह्म पुरुषोत्तमको परमप्राप्य बतलाकर, उसके वाचक ॐकारको प्रतीकरूपसे उसका स्वरूप बतलाते हैं। वे कहते हैं कि समस्त वेद नाना प्रकार और नाना छन्दोंसे जिसका प्रतिपादन करते हैं, सम्पूर्ण तप आदि साधनोंका जो एकमात्र परम और चरम लक्ष्य है तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छासे साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान किया करते हैं, उस पुरुषोत्तम भगवान्‌का परमतत्त्व मैं तुम्हें संक्षेपमें बतलाता हूँ। वह है 'ॐ' यह एक अक्षर॥ १५॥

सम्बन्ध—*नामरहित होनेपर भी परमात्मा अनेक नामोंसे पुकारे जाते हैं। उनके सब नामोंमेंसे 'ओम्' सर्वश्रेष्ठ माना गया है; अतः यहाँ नाम और नामीका अभेद मानकर 'प्रणव' को परब्रह्म पुरुषोत्तमके स्थानमें वर्णन करते हुए यमराज कहते हैं—*

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ १६॥

एतत्=यह; **अक्षरम् एव हि ब्रह्म**=अक्षर ही तो ब्रह्म है (और); **एतत्**=यह; **अक्षरम् एव हि**=अक्षर ही; **परम्**=परब्रह्म है; **एतत् एव हि**=इसी; **अक्षरम्**=अक्षरको; **ज्ञात्वा**=जानकर; **यः**=जो; **यत्**=जिसको; **इच्छति**=चाहता है; **तस्य**=उसको; **तत्**=वही (मिल जाता है)॥ १६॥

व्याख्या—यह अविनाशी प्रणव—ॐकार ही तो ब्रह्म (परमात्मा)-का निर्विशेष स्वरूप है और यही स्वयं समग्र ब्रह्म परम पुरुष पुरुषोत्तम है अर्थात् उस ब्रह्म और परब्रह्म दोनोंका ही नाम ॐकार है। अतः इस तत्त्वको समझकर साधक इसके द्वारा दोनोंमेंसे किसी भी अभीष्ट रूपको प्राप्त कर सकता है*॥ १६॥

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ १७॥

एतत्=यही; **श्रेष्ठम्**=अत्युत्तम; **आलम्बनम्**=आलम्बन है; **एतत्**=यही (सबका); **परम् आलम्बनम्**=अन्तिम आश्रय है; **एतत्**=इस; **आलम्बनम्**=आलम्बनको; **ज्ञात्वा**=भलीभाँति जानकर; **ब्रह्मलोके**=ब्रह्मलोकमें; **महीयते**=(साधक) महिमान्वित होता है॥ १७॥

व्याख्या—यह ॐकार ही परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारके आलम्बनोंमेंसे सबसे श्रेष्ठ आलम्बन है और यही चरम आलम्बन है। इससे परे और कोई आलम्बन नहीं है अर्थात् परमात्माके श्रेष्ठ नामकी शरण हो जाना ही उनकी प्राप्तिका सर्वोत्तम एवं अमोघ साधन है। इस रहस्यको समझकर जो साधक श्रद्धा और प्रेमपूर्वक इसपर निर्भर करता है, वह निस्सन्देह परमात्माकी प्राप्तिका परम गौरव लाभ करता है॥ १७॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार ॐकारको ब्रह्म और परब्रह्म इन दोनोंका प्रतीक बताकर अब नचिकेताके प्रश्नानुसार यमराज पहले आत्माके स्वरूपका वर्णन करते हैं—*

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ १८॥

---

* इस मन्त्रका यह अर्थ भी किया गया है—

यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है। यह दोनोंका ही प्रतीक है। इसीको उपास्य ब्रह्म जानकर जो 'पर' अथवा—'अपर' जिस ब्रह्मकी इच्छा करता है वह उसीको प्राप्त हो जाता है। यदि उसका उपास्य परब्रह्म (निर्विशेष आत्मा) हो तो वह केवल जाना जा सकता है और यदि अपरब्रह्म (सविशेष सगुण) हो तो प्राप्त किया जा सकता है।

विपश्चित्=नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा; **न जायते**=न तो जन्मता है; **वा न म्रियते**=और न मरता ही है; **अयम् न**=यह न तो स्वयं; **कुतश्चित्**=किसीसे हुआ है; '[**न**=न (इससे);] **कश्चित्**=कोई भी; **बभूव**=हुआ है अर्थात् यह न तो किसीका कार्य है और न कारण ही है; **अयम्**=यह; **अजः**=अजन्मा; **नित्यः**=नित्य; **शाश्वतः**=सदा एकरस रहनेवाला (और); **पुराणः**=पुरातन है अर्थात् क्षय और वृद्धिसे रहित है; **शरीरे हन्यमाने**=शरीरके नाश किये जानेपर भी (इसका); **न हन्यते**=नाश नहीं किया जा सकता[1] ॥ १८ ॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ १९ ॥

चेत्=यदि कोई; **हन्ता**=मारनेवाला व्यक्ति; **हन्तुम्**=अपनेको मारनेमें समर्थ; **मन्यते**=मानता है (और); **चेत्**=यदि; **हतः**=(कोई) मारा जानेवाला व्यक्ति; **हतम्**=अपनेको मारा गया; **मन्यते**=समझता है (तो); **तौ उभौ**=वे दोनों ही; **न विजानीतः**=(आत्मस्वरूपको) नहीं जानते (क्योंकि); **अयम्**=यह आत्मा; **न हन्ति**=न तो (किसीको) मारता है (और); **न हन्यते**=न मारा (ही) जाता है[2] ॥ १९ ॥

व्याख्या—यमराज यहाँ आत्माके शुद्ध स्वरूपका और उसकी नित्यताका निरूपण करते हैं; क्योंकि जबतक साधकको अपनी नित्यता और निर्विकारताका अनुभव नहीं हो जाता एवं वह जबतक अपनेको शरीर आदि अनित्य वस्तुओंसे भिन्न नहीं समझ लेता, तबतक इन अनित्य पदार्थोंसे उसका वैराग्य होकर उसके अन्तःकरणमें नित्य तत्त्वकी अभिलाषा उत्पन्न नहीं होती। उसको यह दृढ़ अनुभूति होनी चाहिये कि जीवात्मा नित्य चेतन ज्ञानस्वरूप है; अनित्य, विनाशी, जड शरीर और भोगोंसे वास्तवमें इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अनादि और अनन्त है, न तो इसका कोई कारण है और न कार्य ही; अतः यह जन्म-मरणसे सर्वथा रहित, सदा एकरस, सर्वथा निर्विकार है। शरीरके नाशसे इसका नाश नहीं होता। जो लोग इसको मारनेवाला या मरनेवाला मानते हैं, वे वस्तुतः आत्मस्वरूपको जानते ही नहीं; वे सर्वथा भ्रान्त हैं। उनकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये। वस्तुतः आत्मा न तो किसीको मारता है और न इसे कोई मार ही सकता है।

साधकको शरीर और भोगोंकी अनित्यता और अपने आत्माकी नित्यतापर विचार करके, इन अनित्य भोगोंसे सुखकी आशाका त्याग करके सदा अपने साथ रहनेवाले नित्य सुखस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेका अभिलाषी बनना चाहिये॥ १८-१९ ॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार आत्मतत्त्वके वर्णनद्वारा नचिकेताके अन्तःकरणमें परब्रह्म पुरुषोत्तमके तत्त्वकी जिज्ञासा उत्पन्न करके यमराज अब परमात्माके स्वरूपका वर्णन करते हैं—*

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥ २० ॥

अस्य=इस; **जन्तोः**=जीवात्माके; **गुहायाम्**=हृदयरूप गुफामें; **निहितः**=रहनेवाला; **आत्मा**=परमात्मा; **अणोः अणीयान्**=सूक्ष्मसे अति सूक्ष्म (और); **महतः महीयान्**=महान्से भी महान् है; **आत्मनः तम् महिमानम्**=परमात्माकी उस महिमाको; **अक्रतुः**=कामनारहित (और); **वीतशोकः**=चिन्तारहित कोई विरला साधक; **धातुप्रसादात्**=सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे ही; **पश्यति**=देख पाता है॥ २० ॥

व्याख्या—इससे पहले जीवात्माके शुद्ध स्वरूपका वर्णन किया गया है, उसीको इस मन्त्रमें 'जन्तु' नाम देकर उसकी बद्धावस्था व्यक्त की गयी है। भाव यह कि यद्यपि परब्रह्म पुरुषोत्तम उस जीवात्माके अत्यन्त

---

१. गीतामें इस मन्त्रके भावको इस प्रकार समझाया गया है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (२।२०)

'यह आत्मा किसी भी कालमें न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।'

२. गीतामें इस मन्त्रके भावको और भी स्पष्टरूपसे व्यक्त किया गया है—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ (२।१९)

'जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मारा गया मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा वास्तवमें न तो किसीको मारता है, न किसीके द्वारा मारा जाता है।'

समीप—जहाँ यह स्वयं रहता है, वहीं हृदयमें छिपे हुए हैं तो भी यह उनकी ओर नहीं देखता। मोहवश भोगोंमें भूला रहता है। इसी कारण यह 'जन्तु' है—मनुष्य-शरीर पाकर भी कीट-पतङ्ग आदि तुच्छ प्राणियोंकी भाँति अपना दुर्लभ जीवन व्यर्थ नष्ट कर रहा है। जो साधक पूर्वोक्त विवेचनके अनुसार अपने-आपको नित्य चेतनस्वरूप समझकर सब प्रकारके भोगोंकी कामनासे रहित और शोकरहित हो जाता है, वह परमात्माकी कृपासे यह अनुभव करता है कि परब्रह्म पुरुषोत्तम अणुसे भी अणु और महान्‌से भी महान्—सर्वव्यापी हैं और इस प्रकार उनकी महिमाको समझकर उनका साक्षात्कार कर लेता है। (यहाँ '**धातुप्रसादात्**' का अर्थ 'परमेश्वरकी कृपा' किया गया है। 'धातु' शब्दका अर्थ सर्वधारक परमात्मा माना गया है। विष्णुसहस्रनाममें भी '**अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः**'—'धातु' को भगवान्‌का एक नाम माना गया है)[1]॥ २०॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति॥ २१॥

आसीनः=(वह परमेश्वर) बैठा हुआ ही; **दूरम् व्रजति**=दूर पहुँच जाता है; **शयानः**=सोता हुआ (भी); **सर्वतः**=सब ओर; **याति**=चलता रहता है; **तम् मदामदम् देवम्**=उस ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त न होनेवाले देवको; **मदन्यः कः**=मुझसे भिन्न दूसरा कौन; **ज्ञातुम्**=जाननेमें; **अर्हति**=समर्थ है॥ २१॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्धधर्माश्रय हैं। एक ही समयमें उनमें विरुद्ध धर्मोंकी लीला होती है। इसीसे वे एक ही साथ सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्-से-महान् बताये गये हैं। यहाँ यह कहते हैं कि वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाममें विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर-से-दूर चले जाते हैं। परमधाममें निवास करनेवाले पार्षद भक्तोंकी दृष्टिमें वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। उनकी सर्वव्यापकता ऐसी है कि बैठे भी वही हैं, दूर देशमें चलते हुए भी वही हैं, सोते भी वही हैं और सब ओर जाते-आते भी वही हैं। वे सर्वत्र सब रूपोंमें नित्य अपनी महिमामें स्थित हैं। इस प्रकार अलौकिक परमैश्वर्यस्वरूप होनेपर भी उन्हें अपने ऐश्वर्यका तनिक भी अभिमान नहीं है। उन परमदेवको जाननेका अधिकारी उनका कृपापात्र मेरे (आत्मतत्त्वज्ञ यमराजके सदृश अधिकारियोंके) सिवा दूसरा कौन हो सकता है?[2]॥ २१॥

सम्बन्ध—*अब इस प्रकार उन परमेश्वरकी महिमाको समझनेवाले पुरुषकी पहचान बताते हैं—*

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥ २२॥

अनवस्थेषु=(जो) स्थिर न रहनेवाले (विनाशशील); **शरीरेषु**=शरीरोंमें; **अशरीरम्**=शरीररहित (एवं); **अवस्थितम्**=अविचलभावसे स्थित है; **महान्तम्**=(उस) महान्; **विभुम्**=सर्वव्यापी; **आत्मानम्**=परमात्माको; **मत्वा** = जानकर; **धीर** = बुद्धिमान् महापुरुष; **न शोचति**=(कभी किसी भी कारणसे) शोक नहीं करता॥ २२॥

व्याख्या—प्राणियोंके शरीर अनित्य और विनाशशील हैं, इनमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इन सबमें समभावसे स्थित परब्रह्म पुरुषोत्तम इन शरीरोंसे सर्वथा रहित, अशरीरी हैं। इसी कारण वे नित्य और अचल

---

१. एक आदरणीय महानुभावने इसका निम्नलिखित अर्थ करते हुए 'धातुप्रसादात्' का अर्थ 'इन्द्रियोंकी निर्मलता' माना है—

'....यह आत्मा ही सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर और महान्-से-महान् है; क्योंकि नाम-रूपवाली सभी वस्तुएँ इसकी उपाधि हैं। बाह्य विषयोंसे उपरत दृष्टिवाला निष्काम साधक अपनी इन्द्रियों—जो शरीरको धारण करनेके कारण 'धातु' कहलाती हैं—के प्रसाद—निर्मलतासे उस आत्माकी कर्मनिमित्तक वृद्धि और क्षयसे रहित महिमाको देखता है अर्थात् इस बातको साक्षात् जानता है कि यह मैं हूँ, तदनन्तर वह शोकरहित हो जाता है।'

२. कुछ आदरणीय महानुभावोंने ऐसा अर्थ किया है—

वह अचल होकर भी दूर चला जाता है तथा शयन करता हुआ भी सब ओर पहुँचता है, इस प्रकार वह आत्मा समद और अमद—हर्षसहित और हर्षरहित—इस प्रकार विरुद्ध धर्मवाला है। उस मदयुक्त और मदरहित देवको मेरे सिवा और कौन जा सकता है?

हैं। प्राकृत देश-काल-गुणादिसे अपरिच्छिन्न उन महान्, सर्वव्यापी, सबके आत्मरूप परमेश्वरको जान लेनेके बाद वह ज्ञानी महापुरुष कभी किसी भी कारणसे किञ्चिन्मात्र भी शोक नहीं करता। यही उसकी पहचान है[1]॥ २२॥

सम्बन्ध—*अब यह बतलाते हैं कि वे परमात्मा अपने पुरुषार्थसे नहीं मिलते, वरं उसीको मिलते हैं, जिसको वे स्वीकार कर लेते हैं—*

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳ स्वाम्॥ २३॥

अयम्=यह; **आत्मा न**=परब्रह्म परमात्मा न तो; **प्रवचनेन**=प्रवचनसे; **न मेधया**=न बुद्धिसे (और); **न बहुना श्रुतेन**=न बहुत सुननेसे ही; **लभ्यः**=प्राप्त हो सकता है; **यम्**=जिसको; **एषः**=यह; **वृणुते**=स्वीकार कर लेता है; **तेन एव लभ्यः**=उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है (क्योंकि); **एषः आत्मा**=यह परमात्मा; **तस्य**=उसके लिये; **स्वाम् तनूम्**=अपने यथार्थ स्वरूपको; **विवृणुते**=प्रकट कर देता है॥ २३॥

व्याख्या—जिन परमेश्वरकी महिमाका वर्णन मैं कर रहा हूँ, वे न तो उनको मिलते हैं, जो शास्त्रोंको पढ़-सुनकर लच्छेदार भाषामें परमात्मतत्त्वका नाना प्रकारसे वर्णन करते हैं; न उन तर्कशील बुद्धिमान् मनुष्योंको ही मिलते हैं, जो बुद्धिके अभिमानमें प्रमत्त हुए तर्कके द्वारा विवेचन करके उन्हें समझनेकी चेष्टा करते हैं और न उनको ही मिलते हैं, जो परमात्माके विषयमें बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो उसीको प्राप्त होते हैं, जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और वे स्वीकार उसीको करते हैं, जिसको उनके लिये उत्कट इच्छा होती है, जो उनके बिना रह नहीं सकता। परंतु जो अपनी बुद्धि या साधनपर भरोसा न करके केवल उनकी कृपाकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसे कृपा-निर्भर साधकपर परमात्मा कृपा करते हैं और योगमायाका परदा हटाकर उसके सामने अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें प्रकट हो जाते हैं[2]॥ २३॥

सम्बन्ध—*अब यह बतलाते हैं कि परमात्मा किसको प्राप्त नहीं होते—*

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ २४॥

प्रज्ञानेन=सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा; **अपि**=भी; **एनम्**=इस परमात्माको; **न दुश्चरितात् अविरतः आप्नुयात्**=न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो बुरे आचरणोंसे निवृत्त नहीं हुआ है; **न अशान्तः**=न वह प्राप्त कर सकता है, जो अशान्त है; **न असमाहितः**=न वह कि जिसके मन, इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं; **वा**=और; **न अशान्तमानसः (आप्नुयात्)**=न वही प्राप्त करता है, जिसका मन चञ्चल है॥ २४॥

व्याख्या—जो मनुष्य बुरे आचरणोंसे घृणा करके उनका त्याग नहीं कर देता, जिसका मन परमात्माको छोड़कर दिन-रात सांसारिक भोगोंमें भटकता रहता है, परमात्मापर विश्वास न होनेके कारण जो सदा अशान्त रहता है, जिसका मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ वशमें की हुई नहीं हैं; ऐसा मनुष्य सूक्ष्म बुद्धिद्वारा आत्मविचार करते रहनेपर भी परमात्माको नहीं पा सकता; क्योंकि वह परमात्माकी असीम कृपाका आदर नहीं करता, उसकी अवहेलना करता रहता है; अतः वह उनकी कृपाका अधिकारी नहीं होता॥ २४॥

---

१. इस मन्त्रका यह अर्थ भी माना गया है—

आत्मा अपने स्वरूपसे आकाशके समान है, अतः देव, पितृ और मनुष्यादि शरीरोंमें शरीररहित है, अवस्थितिरहित—अनित्योंमें अवस्थित नित्य अविकारी है; उस महान् और सर्वव्यापक आत्माको 'यही मैं हूँ' ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता।

२. इस मन्त्रका यह अर्थ भी माना गया है—

यह आत्मा वेदोंके प्रवचनसे विदित होने योग्य नहीं है, न मेधा—ग्रन्थ-धारणकी शक्तिसे ही और न केवल बहुत श्रवण करनेसे ही जाना जा सकता है। साधक जिस आत्माका वरण करता है, उस वरण करनेवाले आत्माके द्वारा यह आत्मा स्वयं ही प्राप्त किया जाता है। उस आत्मकामीके प्रति वह आत्मा अपने पारमार्थिक स्वरूपको यथार्थरूपमें प्रकट कर देता है।

सम्बन्ध—*उस परब्रह्म परमेश्वरके तत्त्वको सुनकर और बुद्धिद्वारा विचार करके भी मनुष्य उसे क्यों नहीं जान सकता? इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥ २५॥

यस्य=(संहारकालमें) जिस परमेश्वरके; **ब्रह्म च क्षत्रम् च उभे**=ब्राह्मण और क्षत्रिय—ये दोनों ही अर्थात् सम्पूर्ण प्राणिमात्र; **ओदनः**=भोजन; **भवतः**=बन जाते हैं (तथा); **मृत्युः यस्य**=सबका संहार करनेवाली मृत्यु (भी) जिसका; **उपसेचनम्**=उपसेचन (भोज्य वस्तुके साथ लगाकर खानेका व्यञ्जन, तरकारी आदि); [**भवति**=बन जाती है;] **सः यत्र**=वह परमेश्वर जहाँ (और); **इत्था**=जैसा है, यह ठीक-ठीक; **कः वेद**=कौन जानता है॥ २५॥

व्याख्या—मनुष्य-शरीरमें भी धर्मशील ब्राह्मण और धर्मरक्षक क्षत्रियका शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये अधिक उत्तम माना गया है; किंतु वे भी उन कालस्वरूप परमेश्वरके भोजन बन जाते हैं, फिर अन्य साधारण मनुष्य-शरीरोंकी तो बात ही क्या है। जो सबको मारनेवाले मृत्युदेव हैं, वे भी उन परमेश्वरके उपसेचन अर्थात् भोजनके साथ लगाकर खाये जानेवाले व्यञ्जन—चटनी-तरकारी आदिकी भाँति हैं। ऐसे ब्राह्मण-क्षत्रियादि समस्त प्राणियोंके और स्वयं मृत्युके संहारक अथवा आश्रयदाता परमेश्वरको भला, कोई भी मनुष्य इन अनित्य मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा अन्य ज्ञेय वस्तुओंकी भाँति कैसे जान सकता है। किसकी सामर्थ्य है, जो सबके जाननेवालेको जान ले। अतः (पूर्वोक्त २३वें मन्त्रके अनुसार) जिसको परमात्मा अपनी कृपाका पात्र बनाकर अपना तत्त्व समझाना चाहते हैं, वही उनको जान सकता है। अपनी शक्तिसे उन्हें कोई भी यथार्थरूपमें नहीं जान सकता, क्योंकि वे लौकिक ज्ञेय वस्तुओंकी भाँति बुद्धिके द्वारा जाननेमें आनेवाले नहीं हैं॥ २५॥

॥ द्वितीय वल्ली समाप्त॥ २॥

[तृतीय वल्ली]

सम्बन्ध—*द्वितीय वल्लीमें जीवात्मा और परमात्माके स्वरूपका पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया और उनको जानकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेनेका फल भी बतलाया गया। संक्षेपमें यह बात भी कही गयी कि जिसको वे परमात्मा स्वीकार करते हैं, वही उन्हें जान सकता है; परंतु परमात्माको प्राप्त करनेके साधनोंका वहाँ स्पष्टरूपसे वर्णन नहीं हुआ; अतः साधनोंका वर्णन करनेके लिये तृतीय वल्लीका आरम्भ करते हुए यमराज पहले मन्त्रमें जीवात्मा और परमात्माका नित्य सम्बन्ध और निवास-स्थान बतलाते हैं—*

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥ १॥

सुकृतस्य लोके=शुभ कर्मोंके फलस्वरूप मनुष्य-शरीरमें; **परमे परार्धे**=परब्रह्मके उत्तम निवास-स्थान (हृदय-आकाश)-में; **गुहाम् प्रविष्टौ**=बुद्धिरूप गुफामें छिपे हुए; **ऋतम् पिबन्तौ**=सत्यका पान करनेवाले (दो हैं); **छायातपौ**=(वे) छाया और आतपकी भाँति परस्पर भिन्न हैं; (यह बात) **ब्रह्मविदः**=ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी महापुरुष; **वदन्ति**=कहते हैं; **च ये**=तथा जो; **त्रिणाचिकेताः**=तीन बार नाचिकेत अग्निका चयन कर लेनेवाले (और); **पञ्चाग्नयः**=पञ्चाग्निसम्पन्न गृहस्थ हैं; (**ते वदन्ति**=वे भी यही बात कहते हैं)॥ १॥

व्याख्या—यमराजने यहाँ जीवात्मा और परमात्माके नित्य सम्बन्धका परिचय देते हुए कहा कि ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी महानुभाव तथा यज्ञादि शुभकर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले आस्तिक सज्जन—सभी एक स्वरसे यही कहते हैं कि यह मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है। पूर्वजन्मार्जित अनेकों पुण्यकर्मोंको निमित्त बनाकर परम कृपालु परमात्मा कृपापरवश हो जीवको उसके कल्याण-सम्पादनके लिये यह श्रेष्ठ शरीर प्रदान करते

हैं और फिर उस जीवात्माके साथ ही स्वयं भी उसीके हृदयके अन्तस्तलमें—परब्रह्मके निवासस्वरूप श्रेष्ठ स्थानमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हो रहते हैं। इतना ही नहीं, वे दोनों साथ-ही-साथ वहाँ सत्यका पान करते हैं—शुभ-कर्मोंके अवश्यम्भावी सत्फलका भोग करते हैं (गीता ५। २९)। अवश्य ही दोनोंके भोगमें बड़ा अन्तर है। परमात्मा असंग और अभोक्ता हैं; उनका प्रत्येक प्राणीके हृदयमें निवास करके उसके शुभकर्मोंके फलका उपभोग करना उनकी वैसी ही लीला है, जैसी अजन्मा होकर जन्म ग्रहण करना। इसलिये यह कहा जाता है कि वे भोगते हुए भी वस्तुतः नहीं भोगते अथवा यह भी कहा जा सकता है कि परमात्मा सत्यको पिलाते हैं—शुभकर्मका फल भुगताते हैं और जीवात्मा पीता है—फल भोगता है। परंतु जीवात्मा फलभोगके समय असंग नहीं रहता। वह अभिमानवश उसमें सुखका उपभोग करता है। इस प्रकार साथ रहनेपर भी जीवात्मा और परमात्मा दोनों छाया और धूपकी भाँति परस्पर भिन्न हैं। जीवात्मा छायाकी भाँति अल्पप्रकाश—अल्पज्ञ है और परमात्मा धूपकी भाँति पूर्णप्रकाश—सर्वज्ञ। परन्तु जीवात्मामें जो कुछ अल्पज्ञान है, वह भी परमात्माका ही है, जैसे छायामें अल्पप्रकाश पूर्णप्रकाशरूप धूपका ही होता है।*

इस रहस्यको समझकर मनुष्यको अपनेमें किसी प्रकारकी भी शक्ति-सामर्थ्यका अभिमान नहीं करना चाहिये और अन्तर्यामीरूपसे सदा-सर्वदा अपने हृदयमें रहनेवाले परम आत्मीय, परम कृपालु परमात्माका नित्य-निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिये॥ १॥

सम्बन्ध—*परमात्माको जानने और प्राप्त करनेका जो सर्वोत्तम साधन 'उन्हें जानने और पानेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये उन्हींसे प्रार्थना करना है' इस बातको यमराज स्वयं प्रार्थना करते हुए बतलाते हैं—*

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳ शकेमहि॥ २॥

ईजानानाम्=यज्ञ करनेवालोंके लिये; **यः सेतुः**=जो दुःख-समुद्रसे पार पहुँचा देनेयोग्य सेतु है; **(तम्) नाचिकेतम्**=उस नाचिकेत अग्निको (और); **पारम् तितीर्षताम्**=संसार-समुद्रसे पार होनेकी इच्छावालोंके लिये; **यत् अभयम्**=जो भयरहित पद है; **(तत्) अक्षरम्**=उस अविनाशी; **परम् ब्रह्म**=परब्रह्म पुरुषोत्तमको; **शकेमहि**=जानने और प्राप्त करनेमें भी हम समर्थ हों॥ २॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं कि हे परमात्मन्! आप हमें वह सामर्थ्य दीजिये, जिससे हम निष्कामभावसे यज्ञादि शुभकर्म करनेकी विधिको भलीभाँति जान सकें और आपके आज्ञापालनार्थ उनका अनुष्ठान करके आपकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकें तथा जो संसार-समुद्रसे पार होनेकी इच्छावाले विरक्त पुरुषोंके लिये निर्भयपद है, उस परम अविनाशी आप परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌को भी जानने और प्राप्त करनेके योग्य बन जायँ।

इस मन्त्रमें यमराजने परमात्मासे उन्हें जाननेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करके यह भाव दिखलाया है कि परब्रह्म पुरुषोत्तमको जानने और प्राप्त करनेका सबसे उत्तम और सरल साधन उनसे प्रार्थना करना ही है॥ २॥

सम्बन्ध—*अब उस परब्रह्म पुरुषोत्तमके परमधाममें किन साधनोंसे सम्पन्न मनुष्य पहुँच सकता है, यह बात रथ और रथीके रूपककी कल्पना करके समझायी जाती है—*

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ ३॥

आत्मानम्=(हे नचिकेता! तुम) जीवात्माको तो; **रथिनम्**=रथका स्वामी (उसमें बैठकर चलनेवाला); **विद्धि**=समझो; **तु**=और; **शरीरम् एव**=शरीरको ही; **रथम्**=रथ (समझो); **तु बुद्धिम्**=तथा बुद्धिको; **सारथिम्**=सारथि (रथको चलानेवाला); **विद्धि**=समझो; **च मनः एव**=और मनको ही; **प्रग्रहम्**=लगाम (समझो)॥ ३॥

---

* इस मन्त्रमें 'जीवात्मा' और 'परमात्मा' को ही गुहामें प्रविष्ट बतलाया गया है, 'बुद्धि' और 'जीव' को नहीं। 'गुहाहितत्वं तु··· परमात्मन एव दृश्यते' (देखिये—ब्रह्मसूत्र अध्याय १ पाद २ सू० ११ का शाङ्करभाष्य)।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ ४॥

मनीषिणः=ज्ञानीजन (इस रूपकमें); **इन्द्रियाणि**=इन्द्रियोंको; **हयान्**=घोड़े; **आहुः**=बतलाते हैं (और); **विषयान्**=विषयोंको; **तेषु गोचरान्**=उन घोड़ोंके विचरनेका मार्ग (बतलाते हैं); **आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्**=(तथा) शरीर, इन्द्रिय और मन—इन सबके साथ रहनेवाला जीवात्मा ही; **भोक्ता**=भोक्ता है; **इति आहुः**=यों कहते हैं॥ ४॥

व्याख्या—जीवात्मा परमात्मासे बिछुड़ा हुआ है अनन्त कालसे, वह अनवरत संसाररूपी बीहड़ वनमें इधर-उधर सुखकी खोजमें भटक रहा है। सुख समझकर जहाँ भी जाता है, वहीं धोखा खाता है। सर्वथा साधनहीन और दयनीय है। जबतक वह परम सुखस्वरूप परमात्माके समीप नहीं पहुँच जाता, तबतक उसे सुख-शान्ति कभी नहीं मिल सकती। उसकी इस दयनीय दशाको देखकर दयामय परमात्माने उसे मानव-शरीररूपी सुन्दर सर्वसाधनसम्पन्न रथ दिया। इन्द्रियरूप बलवान् घोड़े दिये। उनके मनरूपी लगाम लगाकर उसे बुद्धिरूपी सारथिके हाथोंमें सौंप दिया और जीवात्माको उस रथमें बैठाकर—उसका स्वामी बनाकर यह बतला दिया कि वह निरन्तर बुद्धिको प्रेरणा करता रहे और परमात्माकी ओर ले जानेवाले भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम आदिके श्रवण, कीर्तन, मननादि विषयरूप प्रशस्त और सहज मार्गपर चलकर शीघ्र परमात्माके धाममें पहुँच जाय।

जीवात्मा यदि ऐसा करता तो वह शीघ्र ही परमात्मातक पहुँच जाता; परंतु वह अपने परमानन्दमय भगवत्प्राप्तिरूप इस महान् लक्ष्यको मोहवश भूल गया। उसने बुद्धिको प्रेरणा देना बंद कर दिया, जिससे बुद्धिरूपी सारथि असावधान हो गया, उसने मनरूपी लगामको इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़ोंकी इच्छापर छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि जीवात्मा विषयप्रवण इन्द्रियोंके अधीन होकर सतत संसारचक्रमें डालनेवाले लौकिक शब्द-स्पर्शादि विषयोंमें भटकने लगा अर्थात् वह जिन शरीर, इन्द्रिय, मनके सहयोगसे भगवान्‌को प्राप्त करता, उन्हींके साथ युक्त होकर वह विषय-विषके उपभोगमें लग गया॥ ३-४॥

सम्बन्ध—*परमात्माकी ओर न जाकर उसकी इन्द्रियाँ लौकिक विषयोंमें क्यों लग गयीं, इसका कारण बतलाते हैं—*

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥ ५॥

यः सदा=जो सदा; **अविज्ञानवान् तु**=विवेकहीन बुद्धिवाला (और); **अयुक्तेन**=अवशीभूत (चञ्चल); **मनसा**=मनसे (युक्त); **भवति**=रहता है; **तस्य**=उसकी; **इन्द्रियाणि**=इन्द्रियाँ; **सारथेः**=असावधान सारथिके; **दुष्टाश्वाः इव**=दुष्ट घोड़ोंकी भाँति; **अवश्यानि**=वशमें न रहनेवाली; (**भवन्ति**=हो जाती हैं)॥ ५॥

व्याख्या—रथको घोड़े ही चलाते हैं; परंतु उन घोड़ोंको चाहे जिस ओर, चाहे जिस मार्गपर ले जाना—लगाम हाथमें थामे हुए बुद्धिमान् सारथिका काम है। इन्द्रियरूपी बलवान् और दुर्धर्ष घोड़े स्वाभाविक ही आपातरमणीय विषयोंसे भरे संसाररूप हरी-हरी घासके जंगलकी ओर मनमाना दौड़ना चाहते हैं; परंतु यदि बुद्धिरूप सारथि मनरूपी लगामको जोरसे खींचकर उन्हें अपने वशमें कर लेता है तो फिर घोड़े मनरूपी लगामके सहारे बिना चाहे जिस ओर नहीं जा सकते। यह सभी जानते हैं कि इन्द्रियाँ विषयोंका ग्रहण तभी कर सकती हैं, जब मन उनके साथ होता है। घोड़े उसी ओर दौड़ते हैं, जिस ओर लगामका सहारा होता है; पर इस लगामको ठीक रखना सारथिकी बल-बुद्धिपर निर्भर करता है। यदि बुद्धिरूपी सारथि विवेकयुक्त, स्वामीका आज्ञाकारी, लक्ष्यपर सदा स्थिर, बलवान्, मार्गके ज्ञानसे सम्पन्न और इन्द्रियरूपी घोड़ोंको चलानेमें दक्ष नहीं होता तो इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़े उसके वशमें न रहकर लगामके सहारे सारे रथको ही अपने वशमें कर लेते हैं और फलस्वरूप रथी और सारथिसमेत उस रथको लिये हुए गहरे गड्ढेमें गिर पड़ते हैं! बुद्धिके नियन्त्रणसे रहित इन्द्रियाँ उत्तरोत्तर उच्छृङ्खल ही होती चली जाती हैं॥ ५॥

सम्बन्ध—*अब स्वयं सावधान रहकर अपनी बुद्धिको विवेकशील बनानेसे होनेवाला लाभ बतलाते हैं—*

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ ६॥

तु यः सदा=परंतु जो सदा; **विज्ञानवान्**=विवेकयुक्त बुद्धिवाला (और); **युक्तेन**=वशमें किये हुए; **मनसा**=मनसे सम्पन्न; **भवति**= रहता है; **तस्य**=उसकी; **इन्द्रियाणि**=इन्द्रियाँ; **सारथेः**=सावधान सारथिके; **सदश्वाः इव**=अच्छे घोड़ोंकी भाँति; **वश्यानि**=वशमें; (**भवन्ति**= रहती हैं)॥ ६॥

व्याख्या—जो जीवात्मा अपनी बुद्धिको विवेक-सम्पन्न बना लेता है—जिसकी बुद्धि अपने लक्ष्यकी ओर ध्यान रखती हुई नित्य-निरन्तर निपुणताके साथ इन्द्रियोंको सन्मार्गपर चलानेके लिये मनको बाध्य किये रखती है, उसका मन भी लक्ष्यकी ओर लगा रहता है एवं उसकी इन्द्रियाँ निश्चयात्मिका बुद्धिके अधीन रहकर भगवत्सम्बन्धी पवित्र विषयोंके सेवनमें उसी प्रकार संलग्न रहती हैं, जैसे श्रेष्ठ अश्व सावधान सारिथके अधीन रहकर उसके निर्दिष्ट मार्गपर चलते हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*पाँचवें मन्त्रके अनुसार जिसके बुद्धि और मन आदि विवेक और संयमसे हीन होते हैं, उसकी क्या गति होती है—इसे बतलाते हैं—*

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥ ७॥

यः तु सदा=जो कोई सदा; **अविज्ञानवान्**=विवेकहीन बुद्धिवाला; **अमनस्कः**=असंयतचित्त और; **अशुचिः**=अपवित्र; **भवति**=रहता है; **सः तत्पदम्**=वह उस परमपदको; **न आप्नोति**= नहीं पा सकता; **च**=अपितु; **संसारम् अधिगच्छति**=बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्रमें ही भटकता रहता है॥ ७॥

व्याख्या—जिसकी बुद्धि सदा ही विवेक—कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे रहित और मनको वशमें रखनेमें असमर्थ रहती है, जिसका मन निग्रहरहित—असंयत और जिसका विचार दूषित रहता है और जिसकी इन्द्रियाँ निरन्तर दुराचारमें प्रवृत्त रहती हैं, ऐसे बुद्धिशक्तिसे रहित मन-इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले मनुष्यका जीवन कभी पवित्र नहीं रह पाता और इसलिये वह मानव-शरीरसे प्राप्त होनेयोग्य परमपदको नहीं पा सकता, वरं अपने दुष्कर्मोंके परिणामस्वरूप अनवरत इस संसार-चक्रमें ही भटकता रहता है—शूकर-कूकरादि विभिन्न योनियोंमें जन्मता एवं मरता रहता है॥ ७॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥ ८॥

तु यः सदा=परंतु जो सदा; **विज्ञानवान्**=विवेकशील बुद्धिसे युक्त; **समनस्कः**=संयतचित्त (और); **शुचिः**=पवित्र; **भवति**=रहता है; **सः तु**=वह तो; **तत्पदम्**=उस परमपदको; **आप्नोति**=प्राप्त हो जाता है; **यस्मात् भूयः**=जहाँसे (लौटकर) पुनः; **न जायते**=जन्म नहीं लेता॥ ८॥

व्याख्या—इसके विपरीत जो छठे मन्त्रके अनुसार स्वयं सावधान होकर अपनी बुद्धिको निरन्तर विवेकशील बनाये रखता है और उसके द्वारा मनको रोककर इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार पवित्र कर्मोंका निष्कामभावसे आचरण करता है तथा भगवान्‌को अर्पण किये हुए भोगोंका राग-द्वेषसे रहित हो निष्कामभावसे शरीरनिर्वाहके लिये उपभोग करता रहता है, वह परमेश्वरके उस परमधामको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे फिर लौटना नहीं होता॥ ८॥

सम्बन्ध—*आठवें मन्त्रमें कही हुई बातको फिरसे स्पष्ट करते हुए रथके रूपकका उपसंहार करते हैं—*

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ९॥

यः नरः=जो (कोई) मनुष्य; **विज्ञानसारथिः तु**=विवेकशील बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न (और); **मनःप्रग्रहवान्**=मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है; **सः**=वह; **अध्वनः**=संसार-मार्गके; **पारम्**=पार पहुँचकर; **विष्णोः**=परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌के; **तत् परमम् पदम्**=उस सुप्रसिद्ध परमपदको; **आप्नोति**=प्राप्त हो जाता है॥ ९॥

व्याख्या—तृतीय मन्त्रसे नवम मन्त्रतक—सात मन्त्रोंमें रथके रूपकसे यह बात समझायी गयी है कि यह अति दुर्लभ मनुष्य-शरीर जिस जीवात्माको परमात्माकी कृपासे मिल गया है, उसे शीघ्र सचेत होकर भगवत्प्राप्तिके मार्गमें लग जाना चाहिये। शरीर अनित्य है, प्रतिक्षण इसका ह्रास हो रहा है। यदि अपने जीवनके इस अमूल्य समयको पशुओंकी भाँति सांसारिक भोगोंके भोगनेमें ही नष्ट कर दिया गया तो फिर बारम्बार जन्म-मृत्युरूप संसारचक्रमें घूमनेको बाध्य होना पड़ेगा। जिस महान् कार्यकी सिद्धिके लिये यह दुर्लभ मनुष्य-शरीर मिला था, वह पूरा नहीं होगा। अतः मनुष्यको भगवान्‌की कृपासे मिली हुई विवेकशक्तिका उपयोग करना चाहिये। संसारकी अनित्यताको और इन आपातरमणीय विषयजनित सुखोंकी यथार्थ दुःखरूपताको समझकर इनके चिन्तन और उपभोगसे सर्वथा उपरत हो जाना चाहिये। केवल शरीरनिर्वाहके उपयुक्त कर्तव्यकर्मोंका निष्कामभावसे भगवान्‌की आज्ञा समझकर अनुष्ठान करते हुए अपनी बुद्धिमें भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम तथा उनकी अलौकिक शक्ति और अहैतुकी दयापर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करना चाहिये और सर्वतोभावसे भगवान्‌पर ही निर्भर हो जाना चाहिये। अपने मनको भगवान्‌के तत्त्व-चिन्तनमें, वाणीको उनके गुण-वर्णनमें, नेत्रोंको उनके दर्शनमें तथा कानोंको उनकी महिमा-श्रवणमें लगाना चाहिये। इस प्रकार सारी इन्द्रियोंका सम्बन्ध भगवान्‌से जोड़ देना चाहिये। जीवनका एक क्षण भी भगवान्‌की स्मृतिके बिना न बीतने पाये। इसीमें मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है। जो ऐसा करता है, वह निश्चय ही परब्रह्म पुरुषोत्तमके अचिन्त्य परमपदको प्राप्त होकर सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है॥ ९॥

सम्बन्ध—*उपर्युक्त वर्णनमें रथके रूपककी कल्पना करके भगवत्प्राप्तिके लिये जो साधन बतलाया गया, उसमें विवेकशील बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके, इन्द्रियोंको विपरीत मार्गसे हटाकर, भगवत्प्राप्तिके मार्गमें लगानेकी बात कही गयी। इसपर यह जिज्ञासा होती है कि स्वभावसे ही दुष्ट और बलवान् इन्द्रियोंको उनके प्रिय और अभ्यस्त असत्-मार्गसे किस प्रकार हटाया जाय; अतः इस बातका तात्त्विक विवेचन करके इन्द्रियोंको असत्-मार्गसे रोककर भगवान्‌की ओर लगानेका प्रकार बतलाते हैं—*

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ १०॥

हि इन्द्रियेभ्यः=क्योंकि इन्द्रियोंसे; **अर्थाः**=शब्दादि विषय; **पराः च**=बलवान् हैं और; **अर्थेभ्यः**=शब्दादि विषयोंसे; **मनः**=मन; **परम्**=पर (प्रबल) है; **तु मनसः**=और मनसे भी; **बुद्धिः**=बुद्धि; **परा**=पर (बलवती) है; **बुद्धेः**=(तथा) बुद्धिसे; **महान् आत्मा**=महान् आत्मा, (उन सबका स्वामी होनेके कारण); **परः**=अत्यन्त श्रेष्ठ और बलवान् है॥ १०॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें 'पर' शब्दका प्रयोग बलवान्‌के अर्थमें हुआ है, यह बात समझ लेनी चाहिये; क्योंकि कार्य-कारणभावसे या सूक्ष्मताकी दृष्टिसे इन्द्रियोंकी अपेक्षा शब्दादि विषयोंको श्रेष्ठ बतलाना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार 'महान्' विशेषणके सहित 'आत्मा' शब्द भी 'जीवात्मा' का वाचक है, 'महत्तत्त्व'-का नहीं। जीवात्मा इन सबका स्वामी है, अतः उसके लिये 'महान्' विशेषण देना उचित ही है। यदि महत्तत्त्वके अर्थमें इसका प्रयोग होता तो 'आत्मा' शब्दके प्रयोगकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। दूसरी बात यह भी है कि बुद्धि-तत्त्व ही महत्तत्त्व है। तत्त्व-विचारकालमें इसमें भेद नहीं माना जाता। इसके सिवा आगे चलकर जहाँ निरोध (एक तत्त्वको दूसरेमें लीन करने)-का प्रसङ्ग है, वहाँ भी बुद्धिका निरोध 'महान् आत्मा' में करनेके लिये कहा है। इन सब कारणोंसे तथा ब्रह्मसूत्रकारको सांख्यमतानुसार महत्तत्त्व और अव्यक्त प्रकृतिरूप अर्थ स्वीकार न होनेसे भी यही मानना चाहिये कि यहाँ 'महान्' विशेषणके सहित 'आत्मा' पदका अर्थ जीवात्मा ही है।* इसलिये मन्त्रका सारांश यह है कि इन्द्रियोंसे अर्थ (विषय) बलवान् हैं। वे साधककी इन्द्रियोंको बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं; अतः साधकको उचित है कि इन्द्रियोंको

* भाष्यकार प्रातःस्मरणीय स्वामी शंकराचार्यजीने भी यहाँ 'महान् आत्मा' को जीवात्मा ही माना है, महत्तत्त्व नहीं (देखिये ब्रह्मसूत्र अ० १ पा० ४ सू० १ का शाङ्करभाष्य)।

विषयोंसे दूर रखे। विषयोंसे बलवान् मन है। यदि मनकी विषयोंमें आसक्ति न रहे तो इन्द्रियाँ और विषय—ये दोनों साधककी कुछ भी हानि नहीं कर सकते। मनसे भी बुद्धि बलवान् है; अतः बुद्धिके द्वारा विचार करके मनको राग-द्वेषरहित बनाकर अपने वशमें कर लेना चाहिये एवं बुद्धिसे भी इन सबका स्वामी 'महान् आत्मा' बलवान् है। उसकी आज्ञा माननेके लिये ये सभी बाध्य हैं; अतः मनुष्यको आत्मशक्तिका अनुभव करके उसके द्वारा बुद्धि आदि सबको नियन्त्रणमें रखना चाहिये॥ १०॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥ ११॥

महतः=उस जीवात्मासे; **परम्**=बलवती है; **अव्यक्तम्**=भगवान्की माया; **अव्यक्तात्**=अव्यक्त मायासे भी; **परः**=श्रेष्ठ है; **पुरुषः**=परम पुरुष (स्वयं परमेश्वर); **पुरुषात्**=परम पुरुष भगवान्से; **परम्**=श्रेष्ठ और बलवान्; **किञ्चित्**=कुछ भी; **न**=नहीं है; **सा काष्ठा**=वही सबकी परम अवधि (और); **सा परा गतिः**=वही परम गति है॥ ११॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें 'अव्यक्त' शब्द भगवान्की उस त्रिगुणमयी दैवी मायाशक्तिके लिये प्रयुक्त हुआ है, जो गीतामें दुरत्यय (अति दुस्तर) बतायी गयी है (७। १४), जिससे मोहित हुए जीव भगवान्को नहीं जानते (गीता ७। १३)। यही जीवात्मा और परमात्माके बीचमें परदा है, जिसके कारण जीव सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वरको नित्य समीप होनेपर भी नहीं देख पाता। इसे इस प्रकरणमें जीवसे भी बलवान् बतलानेका यह भाव है कि जीव अपनी शक्तिसे इस मायाको नहीं हटा सकता, भगवान्की शरण ग्रहण करनेपर भगवान्की दयाके बलसे ही मनुष्य इससे पार हो सकता है (गीता ७। १४)। यहाँ 'अव्यक्त' शब्दसे सांख्यमतावलम्बियोंका 'प्रधान तत्त्व' नहीं ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि उनके मतमें 'प्रधान' स्वतन्त्र है, वह आत्मासे पर नहीं है तथा आत्माको भोग और मुक्ति—दोनों वस्तुएँ देकर उसका प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है। परंतु उपनिषद् और गीताने इस अव्यक्त प्रकृतिको कहीं भी मुक्ति देनेमें समर्थ नहीं माना है। अतः इस मन्त्रका तात्पर्य यह है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन सबपर आत्माका अधिकार है; अतः यह स्वयं उनको वशमें करके भगवान्की ओर बढ़ सकता है। परंतु इस आत्मासे भी बलवान् एक और तत्त्व है, जिसका नाम 'अव्यक्त' है। कोई उसे प्रकृति और कोई माया भी कहते हैं। इसीसे सब जीवसमुदाय मोहित होकर उसके वशमें हो रहा है। इसको हटाना जीवके अधिकारकी बात नहीं है; अतः इससे भी बलवान् जो इसके स्वामी परमपुरुष परमेश्वर हैं—जो बल, क्रिया और ज्ञान आदि सभी शक्तियोंकी अन्तिम अवधि और परम आधार हैं,—उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। जब वे दया करके इस मायारूप परदेको स्वयं हटा लेंगे, तब उसी क्षण वहीं भगवान्की प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि वे तो सदासे ही सर्वत्र विद्यमान हैं*॥ ११॥

सम्बन्ध—*यही भाव अगले मन्त्रमें स्पष्ट करते हैं—*

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ १२॥

एषः आत्मा=यह सबका आत्मरूप परमपुरुष; **सर्वेषु भूतेषु**=समस्त प्राणियोंमें रहता हुआ भी; **गूढः**=मायाके परदेमें छिपा रहनेके कारण; **न प्रकाशते**=सबके प्रत्यक्ष नहीं होता; **तु सूक्ष्मदर्शिभिः**=केवल सूक्ष्मतत्त्वोंको समझनेवाले पुरुषोंद्वारा ही; **सूक्ष्मया अग्र्यया बुद्ध्या**=अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धिसे; **दृश्यते**=देखा जाता है॥ १२॥

---

* इन (१०-११) मन्त्रोंके कुछ आदरणीय विद्वानोंद्वारा निम्नलिखित अर्थ भी किये गये हैं—

(१) इन्द्रियोंसे उनके विषय सूक्ष्म, महान् और प्रत्यगात्मस्वरूप हैं; विषयोंसे सूक्ष्म महान् और प्रत्यगात्मस्वरूप मन है; मनसे सूक्ष्मतर, महत्तर और प्रत्यगात्मस्वरूप बुद्धिशब्दवाच्य भूतसूक्ष्म है; उस बुद्धिसे सूक्ष्म और महान् है सबसे पहले उत्पन्न होनेवाला हिरण्यगर्भ-तत्त्व महान् आत्मा (महत्तत्त्व); इस महत्से सूक्ष्मतर प्रत्यगात्मस्वरूप और सबसे महान् अव्यक्त (मूल प्रकृति) है; इस अव्यक्तकी अपेक्षा समस्त कारणोंका कारण और प्रत्यगात्मस्वरूप होनेसे पुरुष सूक्ष्मतर और महान् है।....इस चिद्घनमात्र वस्तुसे भिन्न और कुछ भी नहीं है, इसलिये यही सूक्ष्मत्व, महत्त्व और प्रत्यगात्मत्वकी पराकाष्ठाकी स्थिति या पर्यवसान है और यही उत्कृष्ट गति है।

व्याख्या—ये परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् सबके अन्तर्यामी हैं, अतः सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं; परंतु अपनी मायाके परदेमें छिपे हुए हैं, इस कारण उनके जाननेमें नहीं आते। जिन्होंने भगवान्‌का आश्रय लेकर अपनी बुद्धिको तीक्ष्ण बना लिया है, वे सूक्ष्मदर्शी ही भगवान्‌की दयासे सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा उन्हें देख पाते हैं॥ १२॥

सम्बन्ध—*विवेकशील मनुष्यको भगवान्‌के शरण होकर किस प्रकार भगवान्‌की प्राप्तिके लिये साधन करना चाहिये?—इस जिज्ञासापर कहते हैं—*

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥ १३॥

प्राज्ञः=बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि; **वाक्**=(पहले) वाक् आदि (समस्त इन्द्रियों)-को; **मनसी**=मनमें; **यच्छेत्**=निरुद्ध करे; **तत्**=उस मनको; **ज्ञाने आत्मनि**=ज्ञानस्वरूप बुद्धिमें; **यच्छेत्**=विलीन करे; **ज्ञानम्**=ज्ञानस्वरूप बुद्धिको; **महति आत्मनि**=महान् आत्मामें; **नियच्छेत्**=विलीन करे (और); **तत्**=उसको; **शान्ते आत्मनि**=शान्तस्वरूप परमपुरुष परमात्मामें; **यच्छेत्**=विलीन करे॥ १३॥

व्याख्या—बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि वह पहले तो वाक् आदि इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर मनमें विलीन कर दे अर्थात् इनकी ऐसी स्थिति कर दे कि इनकी कोई भी क्रिया न हो—मनमें विषयोंकी स्फुरणा न रहे। जब यह साधन भलीभाँति होने लगे, तब मनको ज्ञानस्वरूप बुद्धिमें विलीन कर दे अर्थात् एकमात्र विज्ञानस्वरूप निश्चयात्मिका बुद्धिकी वृत्तिके सिवा मनकी भिन्न सत्ता न रहे, किसी प्रकारका अन्य कोई भी चिन्तन न रहे। जब यहाँतक दृढ़ अभ्यास हो जाय, तदनन्तर उस ज्ञानस्वरूपा बुद्धिको भी जीवात्माके शुद्ध स्वरूपमें विलीन कर दे अर्थात् ऐसी स्थितिमें स्थित हो जाय, जहाँ एकमात्र आत्मतत्त्वके सिवा—अपनेसे भिन्न किसी भी वस्तुकी सत्ता या स्मृति नहीं रह जाती। इसके पश्चात् अपने-आपको भी पूर्व निश्चयके अनुसार शान्त आत्मारूप परब्रह्म पुरुषोत्तममें विलीन कर दे*॥ १३॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार परमात्माके स्वरूपका वर्णन तथा उसकी प्राप्तिका महत्त्व और साधन बतलाकर अब श्रुति मनुष्योंको सावधान करती हुई कहती है—*

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ १४॥

उत्तिष्ठत=(हे मनुष्यो!) उठो; **जाग्रत**=जागो (सावधान हो जाओ और); **वरान्**=श्रेष्ठ महापुरुषोंके; **प्राप्य**=पास जाकर (उनके द्वारा); **निबोधत**=उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लो (क्योंकि); **कवयः**=त्रिकालज्ञ ज्ञानीजन; **तत् पथः**=उस तत्त्वज्ञानके मार्गको; **क्षुरस्य**=छूरेकी; **निशिता दुरत्यया**=तीक्ष्ण एवं दुस्तर; **धारा (इव)**=धारके सदृश; **दुर्गम्**=दुर्गम (अत्यन्त कठिन); **वदन्ति**=बतलाते हैं॥ १४॥

व्याख्या—हे मनुष्यो! तुम जन्म-जन्मान्तरसे अज्ञाननिद्रामें सो रहे हो। अब तुम्हें परमात्माकी दयासे यह दुर्लभ मनुष्य-शरीर मिला है। इसे पाकर अब एक क्षण भी प्रमादमें मत खोओ। शीघ्र सावधान हो जाओ। श्रेष्ठ महापुरुषोंके पास जाकर उनके उपदेशद्वारा अपने कल्याणका मार्ग और परमात्माका रहस्य समझ लो। परमात्माका तत्त्व बड़ा गहन है; उसके स्वरूपका ज्ञान, उसकी प्राप्तिका मार्ग महापुरुषोंकी सहायता और परमात्माकी कृपाके बिना वैसा ही दुस्तर है, जिस प्रकार छूरेकी तेज धारपर चलना। ऐसे दुस्तर मार्गसे सुगमतापूर्वक पार होनेका सरल उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बता सकते हैं, जो स्वयं इसे पार कर चुके हैं॥ १४॥

---

(२) इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री देवता सोम, कुबेर, सूर्य, वरुण, अश्विनी, अग्नि, इन्द्र, जयन्त, यम और दक्षकी अपेक्षा अर्थ (विषयों)-के अधिष्ठात्री देवता सौपर्णी, वारुणी और उमा (शब्द-स्पर्शकी अधिष्ठात्री सौपर्णी, रूप-रसकी वारुणी और गन्धकी उमा हैं) श्रेष्ठ हैं; इनसे मनके अधिष्ठात्री देवता रुद्र, वीन्द्र (पक्षिराज गरुड़) और शेष श्रेष्ठ हैं; मनके देवताओंसे बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता सरस्वती श्रेष्ठ हैं; सरस्वतीसे महत्तत्त्वके अधिष्ठात्री देवता ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं; ब्रह्मासे अव्यक्तकी अधिष्ठात्री देवता श्री या रमा श्रेष्ठ हैं और उनसे श्रेष्ठ पुरुषशब्दवाच्य विष्णु हैं। वे परिपूर्ण हैं, उनके तुल्य ही कोई नहीं है, फिर उनसे श्रेष्ठ तो कैसे हो?

* इसका यह अर्थ भी किया गया है—

विवेकी पुरुष वाक्-इन्द्रियका मनमें उपसंहार करे; यहाँ वाक् शब्द उपलक्षणमात्र है, तात्पर्य यह है कि समस्त इन्द्रियोंको मनके अधीन करे; उस मनको ज्ञान शब्दवाच्य बुद्धिरूप आत्मामें संयत करे; उस बुद्धिको हिरण्यगर्भकी उपाधिस्वरूप महत्तत्त्वमें लीन करे और महत्तत्त्वको भी शान्त (निष्क्रिय) आत्मामें निरोध करे।

सम्बन्ध—*ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग इतना दुस्तर क्यों है?—इस जिज्ञासापर परमात्माके स्वरूपका वर्णन करते हुए उसको जाननेका फल बतलाते हैं—*

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥ १५॥

यत्=जो; **अशब्दम्**=शब्दरहित; **अस्पर्शम्**=स्पर्शरहित; **अरूपम्**=रूपरहित; **अरसम्**=रसरहित; **च**=और; **अगन्धवत्**=बिना गन्धवाला है; **तथा**=तथा (जो); **अव्ययम्**=अविनाशी; **नित्यम्**=नित्य; **अनादि**=अनादि; **अनन्तम्**=अनन्त (असीम); **महतः परम्**=महान् आत्मासे श्रेष्ठ (एवं); **ध्रुवम्**=सर्वथा सत्य तत्त्व है; **तत्**=उस परमात्माको; **निचाय्य**=जानकर (मनुष्य); **मृत्युमुखात्**=मृत्युके मुखसे; **प्रमुच्यते**=सदाके लिये छूट जाता है॥ १५॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें उस परब्रह्म परमात्माको प्राकृत शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धसे रहित बतलाकर यह दिखलाया गया है कि सांसारिक विषयोंको ग्रहण करनेवाली इन्द्रियोंकी वहाँ पहुँच नहीं है। वे नित्य, अनादि और असीम हैं। जीवात्मासे भी श्रेष्ठ और सर्वथा सत्य हैं। उन्हें जानकर मनुष्य सदाके लिये जन्म-मरणसे छूट जाता है* ॥ १५॥

सम्बन्ध—*यहाँतक एक अध्यायके उपदेशको पूर्ण करके अब इस आख्यानके श्रवण और वर्णनका माहात्म्य बतलाते हैं—*

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥ १६॥

मेधावी=बुद्धिमान् मनुष्य; **मृत्युप्रोक्तम्**=यमराजके द्वारा कहे हुए; **नाचिकेतम्**= नचिकेताके; **सनातनम्**=(इस) सनातन; **उपाख्यानम्**=उपाख्यानका; **उक्त्वा**=वर्णन करके; **च**=और; **श्रुत्वा**=श्रवण करके; **ब्रह्मलोके**=ब्रह्मलोकमें; **महीयते**=महिमान्वित होता है (प्रतिष्ठित होता है)॥ १६॥

व्याख्या—यह जो इस अध्यायमें नचिकेताके प्रति यमराजका उपदेश है, यह कोई नयी बात नहीं है; यह परम्परा-गत सनातन उपाख्यान है। इसका वर्णन करनेवाला और श्रवण करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठावाला होता है॥ १६॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते।
तदानन्त्याय कल्पत इति॥ १७॥

यः=जो मनुष्य; **प्रयतः**=सर्वथा शुद्ध होकर; **इमम्**=इस; **परमम् गुह्यम्**=परम गुह्य रहस्यमय प्रसङ्गको; **ब्रह्मसंसदि**=ब्राह्मणोंकी सभामें; **श्रावयेत्**=सुनाता है; **वा**=अथवा; **श्राद्धकाले**=श्राद्धकालमें; [**श्रावयेत्**] =भोजन करनेवालोंको) सुनाता है; **तत्**=(उसका) वह श्रवण करानारूप कर्म; **आनन्त्याय कल्पते**=अनन्त होनेमें (अविनाशी फल देनेमें) समर्थ होता है; **तत् आनन्त्याय कल्पते इति**=वह अनन्त होनेमें समर्थ होता है॥ १७॥

व्याख्या—जो मनुष्य विशुद्ध होकर सावधानतापूर्वक इस परम रहस्यमय प्रसङ्गको तत्त्वविवेचनपूर्वक भगवत्प्रेमी शुद्धबुद्धि ब्राह्मणोंकी सभामें सुनाता है अथवा श्राद्धकालमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसका वह वर्णनरूप कर्म अनन्त फल देनेवाला होता है। अनन्त होनेमें समर्थ होता है। दुबारा कहकर इस सिद्धान्तकी निश्चितता और अध्यायकी समाप्तिका लक्ष्य कराया गया है॥ १७॥

॥ तृतीय वल्ली समाप्त॥ ३॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त॥ १॥

* एक आदरणीय महानुभावने इसका यह अर्थ किया है—

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य और अगन्ध है, जो अनादि, अनन्त, महत्तत्त्वसे भी विलक्षण और कूटस्थ नित्य है, उस ब्रह्म आत्माको जानकर पुरुष मृत्युके मुखसे छूट जाता है।

ॐ

द्वितीय अध्याय

[प्रथम वल्ली]

सम्बन्ध—*तृतीय वल्लीमें यह बतलाया गया कि वे परब्रह्म परमेश्वर सम्पूर्ण प्राणियोंमें वर्तमान हैं, परंतु सबको दीखते नहीं। कोई विरला ही उन्हें सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा देख सकता है। इसपर यह प्रश्न होता है कि जब वे ब्रह्म अपने ही हृदयमें हैं तो उन्हें सभी लोग अपनी बुद्धिरूप नेत्रोंद्वारा क्यों नहीं देख लेते? कोई विरला ही क्यों देखता है? इसपर कहते हैं—*

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ १॥

स्वयंभूः=स्वयं प्रकट होनेवाले परमेश्वरने; **खानि**=समस्त इन्द्रियोंको; **पराञ्चि**=बाहरकी ओर जानेवाली ही; **व्यतृणत्**=बनाया है; **तस्मात्**=इसलिये (मनुष्य इन्द्रियोंके द्वारा प्रायः); **पराङ्**=बाहरकी वस्तुओंको ही; **पश्यति**=देखता है; **अन्तरात्मन्**=अन्तरात्माको; **न**=नहीं; **कश्चित्**=किसी भाग्यशाली; **धीरः**=बुद्धिमान् मनुष्यने ही; **अमृतत्वम्**=अमरपदको; **इच्छन्**=पानेकी इच्छा करके; **आवृत्तचक्षुः**=चक्षु आदि इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंकी ओरसे लौटाकर; **प्रत्यगात्मानम्**=अन्तरात्माको; **ऐक्षत्**=देखा है॥ १॥

व्याख्या—शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध—इन्द्रियोंके ये सभी स्थूल विषय बाहर हैं। इनका यथार्थ ज्ञान करानेके लिये इन्द्रियोंकी रचना हुई है। क्योंकि इनका ज्ञान हुए बिना न तो मनुष्य किसी विषयके स्वरूप और गुणको ही जान सकता है और न उसका यथायोग्य त्याग एवं ग्रहण करके भगवान्‌के इन्द्रिय-निर्माणके उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये उनके द्वारा नवीन शुभ कर्मोंका सम्पादन ही कर सकता है। इन्द्रिय-निर्माण इसीलिये है कि मनुष्य इन्द्रियोंके द्वारा स्वास्थ्यकर, सुबुद्धिदायक, विशुद्ध विषयोंका ग्रहण करके सुखमय जीवन बिताते हुए परमात्माकी ओर अग्रसर हो। इसीलिये स्वयंभू भगवान्‌ने इन्द्रियोंका मुख बाहरकी ओर बनाया; परंतु विवेकके अभावसे अधिकांश मनुष्य इस बातको नहीं जानते और विषयासक्तिवश उन्मत्तकी भाँति आपातरमणीय परंतु परिणाममें भगवान्‌से हटाकर दुःखशोकमय नरकोंमें पहुँचानेवाले अशुद्ध विषय-भोगोंमें ही रचे-पचे रहते हैं। वे अन्तर्यामी परमात्माकी ओर देखते ही नहीं। कोई विरला ही बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा होता है जो सत्संग, स्वाध्याय तथा भगवत्कृपासे अशुद्ध विषयभोगोंकी परिणामदुःखताको जानकर अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त करनेकी इच्छासे इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे लौटाकर, उन्हें भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें लगाकर, अन्तरात्माको—अन्तर्यामी परमात्माको देखता है*॥ १॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥ २॥

(ये) बालाः=(परंतु) जो मूर्ख; **पराचः**=बाह्य; **कामान्**=भोगोंका; **अनुयन्ति**=अनुसरण करते हैं (उन्हींमें रचे-पचे रहते हैं); **ते**=वे; **विततस्य**=सर्वत्र फैले हुए; **मृत्योः**=मृत्युके; **पाशम्**=बन्धनमें; **यन्ति**=पड़ते हैं; **अथ**=किंतु; **धीराः**=बुद्धिमान् मनुष्य; **ध्रुवम्**=नित्य; **अमृतत्वम्**=अमरपदको; **विदित्वा**=विवेकद्वारा जानकर; **इह**=इस जगत्‌में; **अध्रुवेषु**=अनित्य भोगोंमेंसे किसीको (भी); **न प्रार्थयन्ते**=नहीं चाहते अर्थात् उनमें आसक्त नहीं होते॥ २॥

व्याख्या—जो बाह्य (भगवद्विमुख) विषयोंकी चमक-दमक और आपातरमणीयताको देखकर उनमें आसक्त हुए रहते हैं और उनके पाने तथा भोगनेमें ही दुर्लभ एवं अमूल्य मनुष्यजीवनको खो देते हैं,

---

* एक महानुभावने ऐसा अर्थ किया है—

स्वयम्भू भगवान्‌ने कृपा करके (उस भक्तके) बाहरकी ओर जानेवाले इन्द्रिय-प्रवाहको रोक दिया—भीतरकी ओर मोड़ दिया। अतएव वह पुरुष बाहरकी वस्तुओंको नहीं देखता, अन्तरात्माको देखता है। अमृतत्वकी इच्छा करनेवाला कोई शान्तस्वभाव संत ही भगवत्कृपासे इस प्रकार बहिर्विषयोंसे चक्षु आदि इन्द्रियोंको मोड़कर अन्तर्यामी परमात्माको देखता है।

वे मूर्ख हैं। निश्चय ही वे सर्वकालव्यापी मृत्युके पाशमें बँध जाते हैं; दीर्घकालतक नाना प्रकारकी योनियोंमें जन्म धारण करके बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं; परंतु जो बुद्धिमान् हैं वे इस विषयपर गहराईसे यों विचार करते हैं कि 'ये इन्द्रियोंके भोग तो जीवको दूसरी योनियोंमें भी पर्याप्त मिल सकते हैं। मनुष्य-शरीर उन सबसे विलक्षण है। इसका वास्तविक उद्देश्य विषयोपभोग कभी नहीं हो सकता।' इस प्रकार विचार करनेपर जब यह बात उनकी समझमें आ जाती है कि इसका उद्देश्य अमृतस्वरूप नित्य परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति करना है और वह इसी शरीरमें प्राप्त की जा सकती है, तब वे सर्वतोभावसे उसीकी ओर लग जाते हैं। फिर वे इस विनाशशील जगत्में क्षणभङ्गुर भोगोंको प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं करते; इनसे सर्वथा विरक्त होकर सावधानीके साथ परमार्थ-साधनमें लग जाते हैं॥ २॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत्॥ ३॥

येन=जिसके अनुग्रहसे मनुष्य; **शब्दान्**=शब्दोंको; **स्पर्शान्**=स्पर्शोंको; **रूपम्**=रूप-समुदायको; **रसम्**=रस-समुदायको; **गन्धम्**=गन्ध-समुदायको; **च**=और; **मैथुनान्**=स्त्री-प्रसंग आदिके सुखोंको; **विजानाति**=अनुभव करता है (और); **एतेन एव**=इसीके अनुग्रहसे यह भी जानता है कि; **अत्र किम्**=यहाँ क्या; **परिशिष्यते**=शेष रह जाता है; **एतत् वै**=यह ही है; **तत्**=वह परमात्मा (जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ ३॥

व्याख्या—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धात्मक सब प्रकारके विषयोंका और स्त्री-सहवासादिसे होनेवाले सुखोंका मनुष्य जिस परम देवसे मिली हुई ज्ञानशक्तिके द्वारा अनुभव करता है, उन्हींकी दी हुई शक्तिसे इनकी क्षणभङ्गुरताको देखकर वह यह भी समझ सकता है कि इन सबमेंसे ऐसी कौन वस्तु है, जो यहाँ शेष रहेगी? विचार करनेपर यही समझमें आता है कि ये सभी पदार्थ प्रतिक्षण बदलनेवाले होनेसे विनाशशील हैं। इन सबके परम कारण एकमात्र परब्रह्म परमेश्वर ही नित्य हैं। वे पहले भी थे और पीछे भी रहेंगे। अतः हे नचिकेता! तुम्हारा पूछा हुआ वह ब्रह्मतत्त्व यही है जो सबका शेषी है, सबका पर्यवसान है, सबकी अवधि और सबकी परम गति है॥ ३॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥ ४॥

स्वप्नान्तम् च=स्वप्नके दृश्यों और; **जागरितान्तम्**=जाग्रत्-अवस्थाके दृश्यों; **उभौ**=इन दोनोंको (मनुष्य); **येन**=जिससे; **अनुपश्यति**=बार-बार देखता है; [**तम्**=उस;] **महान्तम्**=सर्वश्रेष्ठ; **विभुम्**=सर्वव्यापी; **आत्मानम्**=सबके आत्माको; **मत्वा**=जानकर; **धीरः**=बुद्धिमान् मनुष्य; **न शोचति**=शोक नहीं करता॥ ४॥

व्याख्या—जिस परमात्माके द्वारा यह जीवात्मा स्वप्नमें और जाग्रत्में होनेवाली समस्त घटनाओंका बारम्बार अनुभव करता रहता है, इन सबको जाननेकी शक्ति इसको जिस परब्रह्म परमेश्वरसे मिली है; जिसकी कृपासे ही इस जीवको उस (परमात्मा)-की विज्ञानशक्तिका एक अंश प्राप्त हुआ है, उस सबकी अपेक्षा महान् सदा-सर्वदा सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म परमात्माको जानकर धीर पुरुष कभी, किसी भी कारणसे, किञ्चिन्मात्र भी शोक नहीं करता*॥ ४॥

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥ ५॥

---

* कुछ आदरणीय महानुभावोंने इस मन्त्रका निम्नलिखित भावार्थ माना है—

(१) जिस आत्माके द्वारा स्वप्न तथा जाग्रत् अवस्थाके अन्तर्गत दीखनेवाले पदार्थोंको मनुष्य देखता है, उस महान् और विभु आत्माको जानकर अर्थात् वह 'परमात्मा मैं ही हूँ' ऐसा आत्मभावसे साक्षात् अनुभव कर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता।

(२) निद्राके अन्त और जाग्रदवस्थाके अन्तमें अर्थात् नींदसे जागनेपर और सोनेसे पहले जो उस महान् सर्वव्यापी परमात्मामें मन लगाकर उसीको देखता है—उसीकी स्तुति-उपासना कर अपना सारा दायित्व उसीपर छोड़ उसीके अनन्य आश्रित हो रहता है, उस बुद्धिमान् पुरुषको कोई शोक नहीं होता।

यः=जो मनुष्य; **मध्वदम्**=कर्मफलदाता; **जीवम्***=सबको जीवन प्रदान करनेवाले; (तथा) **भूतभव्यस्य**=भूत, वर्तमान और भविष्यका; **ईशानम्**=शासन करनेवाले; **इमम्**=इस; **आत्मानम्**=परमात्माको; **अन्तिकात् वेद**=(अपने) समीप जानता है; **ततः (सः)**=उसके बाद वह; **न विजुगुप्सते**=(कभी) किसीकी निन्दा नहीं करता; **एतत् वै**=यह ही (है); **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ ५॥

व्याख्या—जो साधक सबको जीवन प्रदान करनेवाले, जीवोंके परम जीवन और उन्हें उनके कर्मोंका फल भुगतानेवाले तथा भूत, वर्तमान और भावी जगत्का एकमात्र शासन करनेवाले उस परब्रह्म परमेश्वरको इस प्रकार समझ लेता है कि 'वह अन्तर्यामीरूपसे निरन्तर मेरे समीप—मेरे हृदयमें ही स्थित है' और इससे स्वाभाविक ही यह अनुमान कर लेता है कि इसी प्रकार वे सर्वनियन्ता परमात्मा सबके हृदयमें स्थित हैं; वह फिर उनके इस महिमामय स्वरूपको कभी नहीं भूल सकता। इसलिये वह कभी किसीकी निन्दा नहीं करता या किसीसे भी घृणा नहीं करता। नचिकेता! तुमने जिस ब्रह्मके विषयमें पूछा था, वह यही है, जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है†॥ ५॥

सम्बन्ध—*अब यह बतलाते हैं कि ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त समस्त प्राणी उन परब्रह्म परमेश्वरसे ही उत्पन्न हुए हैं; अतः जो कुछ भी है, सब उन्हींका रूपविशेष है। उनसे भिन्न यहाँ कुछ भी नहीं है; क्योंकि इस सम्पूर्ण जगत्के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण एकमात्र परमेश्वर ही हैं, वे एक ही अनेक रूपोंमें स्थित हैं।*

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत॥ एतद्वै तत्॥ ६॥

यः=जो; **अद्भ्यः**=जलसे; **पूर्वम्**=पहले; **अजायत**=हिरण्यगर्भरूपमें प्रकट हुआ था; [**तम्**=उस;] **पूर्वम्**=सबसे पहले; **तपसः जातम्**=तपसे उत्पन्न; **गुहाम् प्रविश्य**=हृदयगुफामें प्रवेश करके; **भूतेभिः (सह)**=जीवात्माओंके साथ; **तिष्ठन्तम्**=स्थित रहनेवाले परमेश्वरको; **यः**=जो पुरुष; **व्यपश्यत**=देखता है (वही ठीक देखता है); **एतत् वै**=यह ही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ ६॥

व्याख्या—जो जलसे उपलक्षित पाँचों महाभूतोंसे पहले हिरण्यगर्भ ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुए थे, उन अपने ही सङ्कल्परूप तपसे प्रकट होनेवाले और सब जीवोंके हृदयरूप गुफामें प्रविष्ट होकर उनके साथ रहनेवाले परमेश्वरको जो इस प्रकार जानता है कि 'सबके हृदयमें निवास करनेवाले, सबके अन्तर्यामी परमेश्वर एक ही हैं, यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींकी महिमाका प्रकाश करता है,' वही यथार्थ जानता है। वे सदा सबके हृदयमें रहनेवाले ही ये तुम्हारे पूछे हुए परब्रह्म परमेश्वर हैं॥ ६॥

सम्बन्ध—*उन्हीं परब्रह्मका अब अदितिदेवीके रूपसे वर्णन करते हैं—*

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत॥ एतद्वै तत्॥ ७॥

या=जो; **देवतामयी**=देवतामयी; **अदितिः**=अदिति; **प्राणेन**=प्राणोंके सहित; **सम्भवति**=उत्पन्न होती है; **या**=जो; **भूतेभिः**=प्राणियोंके सहित; **व्यजायत**=उत्पन्न हुई है; (तथा जो) **गुहाम्**=हृदयरूपी गुफामें; **प्रविश्य**=प्रवेश

---

* यहाँ 'जीव' शब्द परमात्माके लिये ही प्रयुक्त हुआ है; क्योंकि भूत, भविष्य और वर्तमानका शासक जीव नहीं हो सकता और प्रकरण भी यहाँ परमात्माका है, जीवका नहीं (देखिये ब्रह्मसूत्र १।३।२४ का शाङ्करभाष्य)।

† कुछ विद्वानोंने इसका यह अर्थ किया है—

(१) जो पुरुष कर्मफलभोक्ता और प्राणधारक इस जीवात्माको अपने समीप भूत और भविष्यका (त्रिकालका) ईश्वर समझता है, वह फिर किसी भयसे अपनेको छिपाकर नहीं रखता। (एक ब्रह्मसत्ताका ज्ञान होनेपर फिर कोई भय नहीं रहता; क्योंकि दूसरेकी सत्ता माननेसे ही भय होता है।)

(२) जो मनुष्य मधु अर्थात् आनन्दके उपभोक्ता, भूत और भविष्यके शासक, जीवके नित्य समीप रहनेवाले, जीवके जीवन परमात्माको जान लेता है, वह फिर किसीसे भय नहीं करता।

करके; **तिष्ठन्तीम्**=वहीं रहती है; (उसे जो पुरुष देखता है, वही यथार्थ देखता है,) **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था) ॥ ७ ॥

व्याख्या—जो सर्वदेवतामयी भगवती अदितिदेवी पहले-पहल उस परब्रह्मके सङ्कल्पसे सब जगत्की जीवनी-शक्तिके सहित उत्पन्न होती है, तथा जो सम्पूर्ण प्राणियोंको बीजरूपसे अपने साथ लेकर प्रकट हुई थी, हृदयरूपी गुहामें प्रविष्ट होकर वहीं रहनेवाली वह भगवती—भगवान्की अचिन्त्यमहाशक्ति भगवान्से सर्वथा अभिन्न है, भगवान् और उनकी शक्तिमें कोई भेद नहीं है, भगवान् ही शक्तिरूपसे सबके हृदयमें प्रवेश किये हुए हैं। हे नचिकेता! वही ये ब्रह्म हैं, जिनके विषयमें तुमने पूछा था।

अथवा—जननीरूपमें समस्त देवताओंका सृजन करनेवाली होनेके कारण जो सर्वदेवतामयी हैं, शब्दादि समस्त भोगसमूहका अदन—भक्षण करनेवाली होनेसे भी जिनका नाम अदिति है, जो हिरण्यगर्भरूप प्राणोंके सहित प्रकट होती हैं और समस्त भूतप्राणियोंके साथ ही जिनका प्रादुर्भाव होता है तथा जो सम्पूर्ण भूतप्राणियोंकी हृदय-गुफामें प्रविष्ट होकर वहाँ स्थित रहती हैं, वे परमेश्वरकी महाशक्ति वस्तुतः उनकी प्रतीक ही हैं। स्वयं परमेश्वर ही इस रूपमें अपनेको प्रकट करते हैं। यही वह ब्रह्म हैं, जिनके सम्बन्धमें नचिकेता! तुमने पूछा था ॥ ७ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥ एतद्वै तत्॥ ८॥

(यः)=जो; **जातवेदाः**=सर्वज्ञ; **अग्निः**=अग्निदेवता; **गर्भिणीभिः**=गर्भिणी स्त्रियोंद्वारा; **सुभृतः**=उपयुक्त अन्नपानादिके द्वारा भलीभाँति परिपुष्ट हुआ; **गर्भः**=गर्भकी; **इव**=भाँति; **अरण्योः**=दो अरणियोंमें; **निहितः**=सुरक्षित है—छिपा है (तथा जो); **जागृवद्भिः**=सावधान (और); **हविष्मद्भिः**=हवन करनेयोग्य सामग्रियोंसे (युक्त); **मनुष्येभिः**=मनुष्योंद्वारा; **दिवे दिवे**=प्रतिदिन; **ईड्यः**=स्तुति करनेयोग्य (है); **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था) ॥ ८ ॥

व्याख्या—जिस प्रकार गर्भिणी स्त्रीके द्वारा शुद्ध अन्न-पानादिसे परिपुष्ट होकर बालक गर्भमें छिपा रहता है और श्रद्धा, प्रीति एवं प्रसवकालीन क्लेशरूप मन्थनके द्वारा समयपर प्रकट होता है, उसी प्रकार अधर और उत्तर अरणि (ऊपर-नीचेके काष्ठखण्ड)-के अंदर अग्निदेवता छिपे हुए रहते हैं एवं इनके उपासक प्रमादरहित होकर एकाग्रता, श्रद्धा तथा प्रीतिके साथ स्तुति करते हुए अरणिमन्थनके द्वारा इन्हें प्रकट करते हैं। तदनन्तर आज्यादि विविध हवन-सामग्रियोंके द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करते हैं। ये अग्निदेवता सर्वज्ञ परमेश्वरके ही प्रतीक हैं। नचिकेता! ये ही वे तुम्हारे पूछे हुए ब्रह्म हैं ॥ ८ ॥

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन॥ एतद्वै तत्॥ ९॥

यतः=जहाँसे; **सूर्यः**=सूर्यदेव; **उदेति**=उदय होते हैं; **च**=और; **यत्र**=जहाँ; **अस्तम् च**=अस्तभावको भी; **गच्छति**=प्राप्त होते हैं; **सर्वे**=सभी; **देवाः**=देवता; **तम्**=उसीमें; **अर्पिताः**=समर्पित हैं; **तत् उ**=उस परमेश्वरको; **कश्चन**=कोई (कभी भी); **न अत्येति**=नहीं लाँघ सकता; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था) ॥ ९ ॥

व्याख्या—जिन परमेश्वरसे सूर्यदेव प्रकट होते हैं और जिनमें जाकर विलीन हो जाते हैं, जिनकी महिमामें ही यह सूर्यदेवताकी उदय-अस्तलीला नियमपूर्वक चलती है, उन परब्रह्ममें ही सम्पूर्ण देवता प्रविष्ट हैं—सब उन्हींमें ठहरे हुए हैं। ऐसा कोई भी नहीं है, जो उन सर्वात्मक, सर्वमय, सबके आदि-अन्त-आश्रयस्थल परमेश्वरकी महिमा और व्यवस्थाका उल्लङ्घन कर सके। सर्वतोभावसे सभी सर्वदा उनके अधीन और उन्हींके अनुशासनमें रहते हैं। कोई भी उनकी महिमाका पार नहीं पा सकता। वे सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तम ही तुम्हारे पूछे हुए ब्रह्म हैं ॥ ९ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥ १०॥

यत् इह=जो परब्रह्म यहाँ (है); **तत् एव अमुत्र**=वही वहाँ (परलोकमें भी है); **यत् अमुत्र**=जो वहाँ (है);

तत् अनु इह=वही यहाँ (इस लोकमें) भी है; **सः मृत्योः**=वह मनुष्य मृत्युसे; **मृत्युम्**=मृत्युको (अर्थात् बारम्बार जन्म-मरणको); **आप्नोति**=प्राप्त होता है; **यः**=जो; **इह**=इस जगत्में; **नाना इव**=(उस परमात्माको) अनेककी भाँति; **पश्यति**=देखता है॥ १०॥

व्याख्या—जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सबके परम कारण, परब्रह्म पुरुषोत्तम यहाँ इस पृथ्वीलोकमें हैं, वही वहाँ परलोकमें अर्थात् देव-गन्धर्वादि विभिन्न अनन्त लोकोंमें भी हैं; तथा जो वहाँ हैं, वही यहाँ भी हैं। एक ही परमात्मा अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। जो उन एक ही परब्रह्मको लीलासे नाना नामों और रूपोंमें प्रकाशित देखकर मोहवश उनमें नानात्वकी कल्पना करता है, उसे पुनः-पुनः मृत्युके अधीन होना पड़ता है, उसके जन्म-मरणका चक्र सहज ही नहीं छूटता। अतः दृढ़रूपसे यही समझना चाहिये कि वे एक ही परब्रह्म परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तिके सहित नाना रूपोंमें प्रकट हैं और यह सारा जगत् बाहर-भीतर उन एक परमात्मासे ही व्याप्त होनेके कारण उन्हींका स्वरूप है॥ १०॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥ ११॥

मनसा एव=(शुद्ध) मनसे ही; **इदम् आप्तव्यम्**=यह परमात्मतत्त्व प्राप्त किये जानेयोग्य है; **इह**=इस जगत्में (एक परमात्मासे अतिरिक्त); **नाना**=नाना (भिन्न-भिन्न भाव); **किंचन**=कुछ भी; **न अस्ति**=नहीं है; (इसलिये) **यः इह**=जो इस जगत्में; **नाना इव**=नानाकी भाँति; **पश्यति**=देखता है; **सः**=वह मनुष्य; **मृत्योः**=मृत्युसे; **मृत्युम् गच्छति**=मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् बार-बार जन्मता-मरता रहता है॥ ११॥

व्याख्या—परमात्माका परमतत्त्व शुद्ध मनसे ही इस प्रकार जाना जा सकता है कि इस जगत्में एकमात्र पूर्णब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका स्वरूप है। यहाँ परमात्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो यहाँ विभिन्नताकी झलक देखता है, वह मनुष्य मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् बार-बार जन्मता-मरता रहता है॥ ११॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते॥ एतद्वै तत्॥ १२॥

अङ्गुष्ठमात्रः=अङ्गुष्ठमात्र (परिमाणवाला); **पुरुषः**=परमपुरुष (परमात्मा); **आत्मनि मध्ये**=शरीरके मध्यभाग—हृदयाकाशमें; **तिष्ठति**=स्थित है; **भूतभव्यस्य**=जो कि भूत, (वर्तमान) और भविष्यका; **ईशानः**=शासन करनेवाला (है); **ततः**=उसे जान लेनेके बाद (वह); **न विजुगुप्सते**=किसीकी भी निन्दा नहीं करता; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ १२॥

व्याख्या—यद्यपि अन्तर्यामी परमेश्वर समानभावसे सर्वदा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, तथापि हृदयमें उनका विशेष स्थान माना गया है। परमेश्वर किसी स्थूल-सूक्ष्म आकार-विशेषवाले नहीं हैं, परंतु स्थितिके अनुसार वे सभी आकारोंसे सम्पन्न हैं। क्षुद्र चींटीके हृदयदेशमें वे चींटीके हृदय-परिमाणके अनुसार परिमाणवाले हैं और विशालकाय हाथीके हृदयमें उसके हृदय-परिमाणवाले बनकर विराजित हैं। मनुष्यका हृदय अङ्गुष्ठ-परिमाणका है और मानवशरीर ही परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी माना गया है। अतः मनुष्यका हृदय ही परब्रह्म परमेश्वरकी उपलब्धिका स्थान समझा जाता है। इसलिये यहाँ मनुष्यके हृदय-परिमाणके अनुसार परमेश्वरको अङ्गुष्ठमात्रपरिमाणका कहा गया है। इस प्रकार परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थित देखनेवाला स्वाभाविक ही यह जानता है कि इसी भाँति वे सबके हृदयमें स्थित हैं, अतएव वह फिर किसीकी निन्दा नहीं करता अथवा किसीसे घृणा नहीं करता। नचिकेता! यही वह ब्रह्म हैं, जिनके विषयमें तुमने पूछा था॥ १२॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः॥ एतद्वै तत्॥ १३॥

अङ्गुष्ठमात्रः=अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला; **पुरुषः**=परमपुरुष परमात्मा; **अधूमकः**=धूमरहित; **ज्योतिः इव**=ज्योतिकी भाँति है; **भूतभव्यस्य**=भूत, (वर्तमान और) भविष्यपर; **ईशानः**=शासन करनेवाला; **सः एव अद्य**=वह परमात्मा ही आज है; **उ**=और; **सः (एव) श्वः**=वही कल भी है (अर्थात् वह नित्य, सनातन है); **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ १३॥

व्याख्या—मनुष्यकी हृदयगुफामें स्थित ये अङ्गुष्ठमात्र पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमानका नियन्त्रण करनेवाले स्वतन्त्र शासक हैं। ये ज्योतिर्मय हैं। सूर्य,अग्निकी भाँति उष्ण प्रकाशवाले नहीं; परंतु दिव्य, निर्मल और शान्त प्रकाशस्वरूप हैं। लौकिक ज्योतियोंमें धूम्ररूप दोष होता है; ये धूम्ररहित—दोषरहित, सर्वथा विशुद्ध हैं। अन्य ज्योतियाँ घटती-बढ़ती हैं और समयपर बुझ जाती हैं; परंतु ये जैसे आज हैं, वैसे ही कल भी हैं। इनकी एकरसता नित्य अक्षुण्ण है। ये कभी न तो घटते-बढ़ते हैं और न कभी मिटते ही हैं। नचिकेता! ये परिवर्तनरहित अविनाशी परमेश्वर ही वे ब्रह्म हैं, जिनके सम्बन्धमें तुमने पूछा था*॥ १३॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति॥ १४॥

यथा=जिस प्रकार; **दुर्गे**=ऊँचे शिखरपर; **वृष्टम्**=बरसा हुआ; **उदकम्**=जल; **पर्वतेषु**=पहाड़के नाना स्थलोंमें; **विधावति**=चारों ओर चला जाता है; **एवम्**=इसी प्रकार; **धर्मान्**=भिन्न-भिन्न धर्मों (स्वभावों)-से युक्त देव, असुर, मनुष्य आदिको; **पृथक्**=परमात्मासे पृथक्; **पश्यन्**=देखकर (उनका सेवन करनेवाला मनुष्य); **तान् एव**=उन्हींके; **अनु-विधावति**=पीछे दौड़ता रहता है (उन्हींके शुभाशुभ लोकोंमें और नाना उच्च-नीच योनियोंमें भटकता रहता है)॥ १४॥

व्याख्या—वर्षाका जल एक ही है; पर वह जब ऊँचे पर्वतकी ऊबड़-खाबड़ चोटीपर बरसता है तो वहाँ ठहरता नहीं, तुरंत ही नीचेकी ओर बहकर विभिन्न वर्ण, आकार और गन्धको धारण करके पर्वतमें चारों ओर बिखर जाता है। इसी प्रकार एक ही परमात्मासे प्रवृत्त विभिन्न स्वभाववाले देव-असुर-मनुष्यादिको जो परमात्मासे पृथक् मानता है और पृथक् मानकर ही उनका सेवन करता है, उसे भी बिखरे हुए जलकी भाँति ही विभिन्न देव-असुरादिके लोकोंमें एवं नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकना पड़ता है, वह ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकता॥ १४॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥ १५॥

यथा=(परंतु) जिस प्रकार; **शुद्धे (उदके)**=निर्मल जलमें; **आसिक्तम्**=(मेघोंद्वारा) सब ओरसे बरसाया हुआ; **शुद्धम्**=निर्मल; **उदकम्**=जल; **तादृक् एव**=वैसा ही; **भवति**=हो जाता है; **एवम्**=इसी प्रकार; **गौतम**=हे गौतमवंशी नचिकेता!; **विजानतः**=(एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तम ही सब कुछ है, इस प्रकार) जाननेवाले; **मुनेः**=मुनिका (अर्थात् संसारसे उपरत हुए महापुरुषका); **आत्मा**=आत्मा; **भवति**=(ब्रह्मको प्राप्त) हो जाता है॥ १५॥

व्याख्या—परंतु वही वर्षाका निर्मल जल यदि निर्मल जलमें ही बरसता है तो वह उसी क्षण निर्मल जल ही हो जाता है। उसमें न तो कोई विकार उत्पन्न होता है और न वह कहीं बिखरता ही है। इसी प्रकार, हे गौतमवंशीय नचिकेता! जो इस बातको भलीभाँति जान गया है कि जो कुछ है, वह सब परब्रह्म पुरुषोत्तम ही है, उस मननशील—संसारके बाहरी स्वरूपसे उपरत पुरुषका आत्मा परब्रह्ममें मिलकर उसके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त हो जाता है॥ १५॥

॥ प्रथम वल्ली समाप्त॥ १॥ (४)

* यहाँ 'अङ्गुष्ठमात्र' शब्द परमात्माका वाचक है, जीवका नहीं। प्रातःस्मरणीय आचार्यने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—
"परमात्मैवायमङ्गुष्ठमात्रपरिमितः पुरुषो भवितुमर्हति। कस्मात्? शब्दात्—'ईशानो भूतभव्यस्य' इति। न ह्यन्यः परमेश्वराद् भूतभव्यस्य निरङ्कुशमीशिता।" अर्थात् यहाँ अङ्गुष्ठमात्र-परिमाण पुरुष परमात्मा ही है। कैसे जाना? 'ईशानो' आदि श्रुतिसे। भूत और भव्यका निरङ्कुश नियन्ता परमेश्वरके सिवा दूसरा नहीं हो सकता। (देखिये ब्रह्मसूत्र १।३।२४ का शाङ्करभाष्य)

[द्वितीय वल्ली]

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥ एतद्वै तत्॥ १ ॥

अवक्रचेतसः=सरल, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप; **अजस्य**=अजन्मा परमेश्वरका; **एकादशद्वारम्**=ग्यारह द्वारोंवाला (मनुष्य-शरीररूप); **पुरम्**=पुर (नगर); **(अस्ति)**=है (इसके रहते हुए ही); **अनुष्ठाय**=(परमेश्वरका ध्यान आदि) साधन करके; **न शोचति**=(मनुष्य) कभी शोक नहीं करता; **च**=अपि तु; **विमुक्तः**=जीवन्मुक्त होकर; **विमुच्यते**=(मरनेके बाद) विदेहमुक्त हो जाता है; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ १ ॥

व्याख्या—यह मनुष्यशरीररूपी पुर दो आँख, दो कान, दो नासिकाके छिद्र, एक मुख, ब्रह्मरन्ध्र, नाभि, गुदा और शिश्न—इन ग्यारह द्वारोंवाला है। यह सर्वव्यापी, अविनाशी, अजन्मा, नित्य निर्विकार, एकरस, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परमेश्वरकी नगरी है। वे सर्वत्र समभावसे सदा परिपूर्ण रहते हुए भी अपनी राजधानीरूप इस मनुष्यशरीरके हृदय-प्रासादमें राजाकी भाँति विशेषरूपसे विराजित रहते हैं। इस रहस्यको समझकर मनुष्यशरीरके रहते हुए ही—जीते-जी जो मनुष्य भजन-स्मरणादि साधन करता है, नगरके महान् स्वामी परमेश्वरका निरन्तर चिन्तन और ध्यान करता है, वह कभी शोक नहीं करता; वह शोकके कारणरूप संसार-बन्धनसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है और शरीर छूटनेके पश्चात् विदेहमुक्त हो जाता है—परमात्माका साक्षात्कार करके जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाके लिये छूट जाता है। यह जो सर्वव्यापक ब्रह्म है, यही वह हैं, जिनके सम्बन्धमें तुमने पूछा था॥ १ ॥

सम्बन्ध—*अब उस परमेश्वरकी सर्वरूपताका स्पष्टीकरण करते हैं—*

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ २ ॥

शुचिषत्=जो विशुद्ध परमधाममें रहनेवाला; **हंसः**=स्वयंप्रकाश पुरुषोत्तम है (वही); **अन्तरिक्षसत्**=अन्तरिक्षमें निवास करनेवाला; **वसुः**=वसु है; **दुरोणसत्**=घरोंमें उपस्थित होनेवाला; **अतिथिः**=अतिथि है (और); **वेदिषत् होता**=यज्ञकी वेदीपर स्थापित अग्निस्वरूप तथा उसमें आहुति डालनेवाला 'होता' है (तथा); **नृषत्**=समस्त मनुष्योंमें रहनेवाला; **वरसत्**=मनुष्योंसे श्रेष्ठ देवताओंमें रहनेवाला; **ऋतसत्**=सत्यमें रहनेवाला और; **व्योमसत्**=आकाशमें रहनेवाला (है तथा); **अब्जाः**=जलोंमें नाना रूपोंसे प्रकट होनेवाला; **गोजाः**=पृथिवीमें नानारूपोंसे प्रकट होनेवाला; **ऋतजाः**=सत्कर्मोंमें प्रकट होनेवाला (और); **अद्रिजाः**=पर्वतोंमें नानारूपसे प्रकट होनेवाला (है); **बृहत् ऋतम्**=सबसे बड़ा परम सत्य है॥ २॥

व्याख्या—जो प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत दिव्य विशुद्ध परमधाममें विराजित स्वयंप्रकाश परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं, वही अन्तरिक्षमें विचरनेवाले वसु नामक देवता हैं, वही अतिथिके रूपमें गृहस्थके घरोंमें उपस्थित होते हैं, वही यज्ञकी वेदीपर प्रतिष्ठित ज्योतिर्मय अग्नि तथा उसमें आहुति प्रदान करनेवाले होते हैं, वही समस्त मनुष्योंके रूपमें स्थित हैं; मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ देवता और पितृ आदि रूपमें स्थित, आकाशमें स्थित और सत्यमें प्रतिष्ठित हैं; वही जलोंमें मत्स्य, शङ्ख, शुक्ति आदिके रूपमें प्रकट होते हैं; पृथिवीमें वृक्ष, अङ्कुर, अन्न, ओषधि आदिके रूपमें, यज्ञादि सत्कर्मोंमें नाना प्रकारके यज्ञफलादिके रूपमें और पर्वतोंमें नद-नदी आदिके रूपमें प्रकट होते हैं। वे सभी दृष्टियोंसे सभीकी अपेक्षा श्रेष्ठ, महान् और परम सत्य तत्त्व हैं*॥ २॥

---

* कुछ आदरणीय महानुभावोंने इस मन्त्रके ये अर्थ किये हैं—

(१) जो सर्वथा दोषहीन सर्वसाररूप 'हंस' हैं (हं चासौ—दोषहीनश्चासौ, सश्च साररूपश्च इति हंसः), विशुद्ध (वायु)-में स्थित शुचिषत् हैं, अन्तरिक्षमें स्थित सर्वोपरि सुखस्वरूप वसु (व=वरं, सु+सुखं, यस्य स वसुः) हैं, समस्त इन्द्रियोंके नियन्ता होता हैं, सबके द्वारा सम्मान्य वेद्य वेदिषत् हैं, घरोंमें अतिथि हैं या महान् ऐश्वर्यस्वरूप (अति—महान्, थ—सम्पत्ति-ऐश्वर्य) हैं, सोमरूपसे

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते॥ ३॥

प्राणम्=(जो) प्राणको; **ऊर्ध्वम्**=ऊपरकी ओर; **उन्नयति**=उठाता है (और); **अपानम्**=अपानको; **प्रत्यक् अस्यति**=नीचे ढकेलता है; **मध्ये**=शरीरके मध्य (हृदय)-में; **आसीनम्**=बैठे हुए (उस); **वामनम्**=सर्वश्रेष्ठ भजनेयोग्य परमात्माकी; **विश्वे देवाः**=सभी देवता; **उपासते**=उपासना करते हैं॥ ३॥

व्याख्या—शरीरमें नियमितरूपसे अनवरत प्राण-अपानादिकी क्रिया हो रही है; इन जड पदार्थोंमें जो क्रियाशीलता आ रही है, वह उन परमात्माकी शक्ति और प्रेरणासे ही आ रही है। वे ही मानव-हृदयमें राजाकी भाँति विराजित रहकर प्राणको ऊपरकी ओर चढ़ा रहे हैं और अपानको नीचेकी ओर ढकेल रहे हैं। इस प्रकार शरीरके अंदर होनेवाले सारे व्यापारोंका सुचारुरूपसे सम्पादन कर रहे हैं। उन हृदयस्थित परम भजनीय परब्रह्म पुरुषोत्तमकी सभी देवता उपासना कर रहे हैं—शरीरस्थित प्राण-मन-बुद्धि-इन्द्रियादिके सभी अधिष्ठातृ-देवता उन परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये उन्हींकी प्रेरणाके अनुसार नित्य सावधानीके साथ समस्त कार्योंका यथाविधि सम्पादन करते रहते हैं॥ ३॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते॥ एतद्वै तत्॥ ४॥

अस्य=इस; **शरीरस्थस्य**=शरीरमें स्थित; **विस्रंसमानस्य**=एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेवाले; **देहिनः**=जीवात्माके; **देहात्**=शरीरसे; **विमुच्यमानस्य**=निकल जानेपर; **अत्र**=यहाँ (इस शरीरमें); **किम् परिशिष्यते**=क्या शेष रहता है; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ ४॥

व्याख्या—यह एक शरीरसे दूसरे शरीरमें गमन करनेके स्वभाववाला देही (जीवात्मा) जब इस वर्तमान शरीरसे निकलकर चला जाता है और उसके साथ ही जब इन्द्रिय, प्राण आदि भी चले जाते हैं, तब इस मृत शरीरमें क्या बच रहता है? देखनेमें तो कुछ भी नहीं रहता; पर वह परब्रह्म परमेश्वर, जो सदा-सर्वदा समानभावसे सर्वत्र परिपूर्ण है, जो चेतन जीव तथा जड प्रकृति—सभीमें सदा व्याप्त है, वह रह जाता है। यही वह ब्रह्म है, जिसके सम्बन्धमें तुमने पूछा था॥ ४॥

सम्बन्ध—*अब निम्नाङ्कित दो मन्त्रोंमें यमराज नचिकेताके पूछे हुए तत्त्वको पुनः दूसरे प्रकारसे वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—*

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥ ५॥
हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम॥ ६॥

कश्चन=कोई भी; **मर्त्यः**=मरणधर्मा प्राणी; **न प्राणेन**=न तो प्राणसे (जीता है और); **न अपानेन**=न अपानसे (ही); **जीवति**=जीता है; **तु**=किंतु; **यस्मिन्**=जिसमें; **एतौ उपाश्रितौ**=(प्राण और अपान) ये दोनों आश्रय पाये हुए हैं; **इतरेण**=(ऐसे किसी) दूसरेसे ही; **जीवन्ति**=(सब) जीते हैं; **गौतम**=हे गौतमवंशीय!; **गुह्यम् सनातनम्**=(वह)

दुरोणसत् हैं; जो मनुष्योंमें हैं, उनसे श्रेष्ठ देवताओंमें हैं, वेदोंमें ऋत या सत्यरूप हैं, महान् प्रकृतिमें या श्रीमें हैं, जलसे उत्पन्न मत्स्यादिमें हैं,पृथ्वीसे उत्पन्न वृक्ष-अन्नादिमें हैं, पर्वतोंसे उत्पन्न नदी आदिमें हैं; जो मुक्त पुरुषोंमें हैं (मुक्तोंको 'ऋता' कहते हैं); उनमें रहकर जो उनका नियन्त्रण करता है, वह ऋतजाः है), और परम सत्य हैं तथा सब गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं।

(२) जो गमन करनेवाला है, आकाशमें चलनेवाला सूर्य है, आकाशमें व्याप्त वायु है, पृथ्वीमें रहनेवाला होता—अग्नि है, कलशमें स्थित सोम है, घरोंमें रहनेवाला ब्राह्मण अतिथि है, मनुष्योंमें गमन करनेवाला, देवताओंमें जानेवाला, यज्ञ या सत्यमें निवास करनेवाला, आकाशमें चलनेवाला, जलमें शंख-सीपी आदि रूपोंमें उत्पन्न होनेवाला, पृथ्वीमें अन्नादिरूपसे उत्पन्न होनेवाला, यज्ञाङ्गरूपसे उत्पन्न होनेवाला, पर्वतोंसे नदी आदिके रूपमें उत्पन्न होनेवाला, सत्यस्वरूप और महान् है अर्थात् जगत्का एकमात्र सर्वव्यापक आत्मा है।

रहस्यमय सनातन; **ब्रह्म**=ब्रह्म (जैसा है); **च**=और; **आत्मा**=जीवात्मा; **मरणम् प्राप्य**=मरकर; **यथा**=जिस प्रकारसे; **भवति**=रहता है; **इदम् ते**=यह बात तुम्हें; **हन्त प्रवक्ष्यामि**=मैं अब फिरसे बतलाऊँगा॥ ५-६॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं—नचिकेता! एक दिन निश्चय ही मृत्युके मुखमें जानेवाले ये मनुष्यादि प्राणी न तो प्राणकी शक्तिसे जीवित रहते हैं और न अपानकी शक्तिसे ही। इन्हें जीवित रखनेवाला तो कोई दूसरा ही चेतन तत्त्व है और वह है जीवात्मा। ये प्राण-अपान दोनों उस जीवात्माके ही आश्रित हैं। जीवात्माके बिना एक क्षण भी ये नहीं रह सकते; जब जीवात्मा जाता है, तब केवल ये ही नहीं, इन्हींके साथ इन्द्रियादि सभी उसका अनुसरण करते हुए चले जाते हैं। अब मैं तुमको यह बतलाऊँगा कि मनुष्यके मरनेके बाद इस जीवात्माका क्या होता है, यह कहाँ जाता है, तथा किस प्रकार रहता है और साथ ही यह भी बतलाऊँगा कि उस परम रहस्यमय सर्वव्यापी सर्वाधार सर्वाधिपति परब्रह्म परमेश्वरका क्या स्वरूप है॥ ५-६॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥ ७॥

यथाकर्म=जिसका जैसा कर्म होता है; **यथाश्रुतम्**=और शास्त्रादिके श्रवणद्वारा जिसको जैसा भाव प्राप्त हुआ है (उन्हींके अनुसार); **शरीरत्वाय**=शरीर धारण करनेके लिये; **अन्ये**=कितने ही; **देहिनः**=जीवात्मा तो; **योनिम्**=(नाना प्रकारकी जङ्गम) योनियोंको; **प्रपद्यन्ते**=प्राप्त हो जाते हैं और; **अन्ये**=दूसरे (कितने ही); **स्थाणुम्**=स्थाणु (स्थावर)-भावका; **अनुसंयन्ति**=अनुसरण करते हैं॥ ७॥

व्याख्या—यमराज कहते हैं कि अपने-अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार और शास्त्र, गुरु, सङ्ग, शिक्षा, व्यवसाय आदिके द्वारा देखे-सुने हुए भावोंसे निर्मित अन्तःकालीन वासनाके अनुसार मरनेके पश्चात् कितने ही जीवात्मा तो दूसरा शरीर धारण करनेके लिये शुक्रके साथ माताकी योनिमें प्रवेश कर जाते हैं। इनमें जिनके पुण्य-पाप समान होते हैं, वे मनुष्यका, और जिनके पुण्य कम तथा पाप अधिक होते हैं, वे पशु-पक्षीका शरीर धारण करके उत्पन्न होते हैं और कितने ही, जिनके पाप अत्यधिक होते हैं, वे स्थावरभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् वृक्ष, लता, तृण, पर्वत आदि जड शरीरोंमें उत्पन्न होते हैं॥ ७॥

सम्बन्ध—*यमराजने जीवात्माकी गति और परमात्माका स्वरूप—इन दो बातोंको बतलानेकी प्रतिज्ञा की थी; इनमें 'मरनेके बाद जीवात्माकी क्या गति होती है', इसको बतलाकर अब वे दूसरी बात बतलाते हैं—*

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्॥ ८॥

यः एषः=जो यह; **कामम् कामम्**=(जीवोंके कर्मानुसार) नाना प्रकारके भोगोंका; **निर्मिमाणः**=निर्माण करनेवाला; **पुरुषः**=परमपुरुष परमेश्वर; **सुप्तेषु**=(प्रलयकालमें सबके) सो जानेपर भी; **जागर्ति**=जागता रहता है; **तत् एव**=वही; **शुक्रम्**=परम विशुद्ध तत्त्व है; **तत् ब्रह्म**=वही ब्रह्म है; **तत् एव**=वही; **अमृतम्**=अमृत; **उच्यते**=कहलाता है; (तथा) **तस्मिन्**=उसीमें; **सर्वे**=सम्पूर्ण; **लोकाः श्रिताः**=लोक आश्रय पाये हुए हैं; **तत् कश्चन उ**=उसे कोई भी; **न अत्येति**=अतिक्रमण नहीं कर सकता; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ ८॥

व्याख्या—जीवात्माओंके कर्मानुसार उनके लिये नाना प्रकारके भोगोंका निर्माण करनेवाला तथा उनकी यथायोग्य व्यवस्था करनेवाला जो यह परमपुरुष परमेश्वर समस्त जीवोंके सो जानेपर अर्थात् प्रलयकालमें सबका ज्ञान लुप्त हो जानेपर भी अपनी महिमामें नित्य जागता रहता है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, जिसका ज्ञान सदैव एकरस रहता है, कभी अधिक-न्यून या लुप्त नहीं होता, वही परम विशुद्ध दिव्य तत्त्व है, वही परब्रह्म है; उसीको ज्ञानी महापुरुषोंके द्वारा प्राप्य परम अमृतस्वरूप परमानन्द कहा जाता है। ये सम्पूर्ण लोक उसीके आश्रित हैं। उसे कोई भी नहीं लाँघ सकता—कोई भी उसके नियमोंका अतिक्रमण नहीं कर सकता। सभी सदा-सर्वदा एकमात्र उसीके शासनमें रहनेवाले और उसीके अधीन हैं। कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता। यही है वह ब्रह्मतत्त्व, जिसके विषयमें तुमने पूछा था॥ ८॥

सम्बन्ध—*अब अग्निके दृष्टान्तसे उस परब्रह्म परमेश्वरकी व्यापकता और निर्लेपताका वर्णन करते हैं—*

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ ९॥

यथा=जिस प्रकार; **भुवनम्**=समस्त ब्रह्माण्डमें; **प्रविष्टः**=प्रविष्ट; **एकः अग्निः**=एक ही अग्नि; **रूपम् रूपम्**=नाना रूपोंमें; **प्रतिरूपः**=उनके समान रूपवाला ही; **बभूव**=हो रहा है; **तथा**=वैसे (ही); **सर्वभूतान्तरात्मा**=समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा परब्रह्म; **एकः (सन्)**=एक होते हुए भी; **रूपम् रूपम्**=नाना रूपोंमें; **प्रतिरूपः**=उन्हींके-जैसे रूपवाला (हो रहा है); **च बहिः**=और उनके बाहर भी है॥ ९॥

व्याख्या—एक ही अग्नि निराकाररूपसे सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, उसमें कोई भेद नहीं है; परंतु जब वह साकाररूपसे प्रज्वलित होता है, तब उन आधारभूत वस्तुओंका जैसा आकार होता है, वैसा ही आकार अग्निका भी दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमेश्वर एक हैं और सबमें समभावसे व्याप्त हैं, उनमें किसी प्रकारका कोई भेद नहीं है; तथापि वे भिन्न-भिन्न प्राणियोंमें उन-उन प्राणियोंके अनुरूप नाना रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। भाव यह कि आधारभूत वस्तुके अनुरूप ही उनकी महिमाका प्राकट्य होता है। वास्तवमें उन परमेश्वरकी महत्ता इतनी ही नहीं है, इससे बहुत अधिक और विलक्षण है। उनकी अनन्त शक्तिके एक क्षुद्रतम अंशसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाना प्रकारकी आश्चर्यमय शक्तियोंसे सम्पन्न हो रहा है॥ ९॥

सम्बन्ध—*वही बात वायुके दृष्टान्तसे कहते हैं—*

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ १०॥

यथा=जिस प्रकार; **भुवनम्**=समस्त ब्रह्माण्डमें; **प्रविष्टः**=प्रविष्ट; **एकः वायुः**=एक (ही) वायु; **रूपम् रूपम्**=नाना रूपोंमें; **प्रतिरूपः**=उनके समान रूपवाला ही; **बभूव**=हो रहा है; **तथा**=वैसे (ही); **सर्वभूतान्तरात्मा**=समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा परब्रह्म; **एकः (सन् अपि)**=एक होते हुए भी; **रूपम् रूपम्**=नाना रूपोंमें; **प्रतिरूपः**=उन्हींके-जैसे रूपवाला (हो रहा है); **बहिः च**=और उनके बाहर भी है॥ १०॥

व्याख्या—एक ही वायु अव्यक्तरूपसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें व्याप्त है, तथापि व्यक्तमें भिन्न-भिन्न वस्तुओंके संयोगसे उन-उन वस्तुओंके अनुरूप गति और शक्तिवाला दिखलायी देता है। उसी प्रकार समस्त प्राणियोंका अन्तर्यामी परमेश्वर एक होते हुए भी उन-उन प्राणियोंके सम्बन्धसे पृथक्-पृथक् शक्ति और गतिवाला दीखता है; किंतु वह उतना ही नहीं है, उन सबके बाहर भी अनन्त—असीम एवं विलक्षणरूपसे स्थित है (नवम मन्त्रकी व्याख्याके अनुसार इसे भी समझ लेना चाहिये)॥ १०॥

सम्बन्ध—*इस मन्त्रमें सूर्यके दृष्टान्तसे परमात्माकी निर्लेपता दिखलाते हैं—*

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥ ११॥

यथा=जिस प्रकार; **सर्वलोकस्य**=समस्त ब्रह्माण्डका; **चक्षुः सूर्यः**=प्रकाशक सूर्यदेवता; **चाक्षुषैः**=लोगोंकी आँखोंसे होनेवाले; **बाह्यदोषैः**=बाहरके दोषोंसे; **न लिप्यते**=लिप्त नहीं होता; **तथा**=उसी प्रकार; **सर्वभूतान्तरात्मा**=सब प्राणियोंका अन्तरात्मा परमात्मा; **एकः**=एक है; (तो भी) **लोकदुःखेन**=लोगोंके दुःखोंसे; **न लिप्यते**=लिप्त नहीं होता; [**यतः**=क्योंकि;] **बाह्यः**=सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है॥ ११॥

व्याख्या—एक ही सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है। उसका प्रकाश प्राणिमात्रकी आँखोंका सहायक है। उस प्रकाशकी ही सहायता लेकर लोग नाना प्रकारके गुण-दोषमय कर्म करते हैं; परंतु सूर्य उनके

नेत्रोंद्वारा किये जानेवाले नाना प्रकारके बाह्य कर्मरूप दोषोंसे तनिक भी लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार सबके अन्तर्यामी भगवान् परब्रह्म पुरुषोत्तम एक हैं; उन्हींकी शक्तिसे शक्तियुक्त होकर मन, बुद्धि और इन्द्रियोंद्वारा मनुष्य नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्म करते हैं तथा उनका फलरूप सुख-दुःखादि भोगते हैं। परन्तु वे परमेश्वर उनके कर्म और दुःखोंसे लिप्त नहीं होते; क्योंकि वे सबमें रहते हुए भी सबसे पृथक् और सर्वथा असङ्ग हैं॥ ११॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥ १२॥

यः=जो; **सर्वभूतान्तरात्मा**=सब प्राणियोंका अन्तर्यामी; **एकः वशी**=अद्वितीय एवं सबको वशमें रखनेवाला (परमात्मा); **एकम् रूपम्**=(अपने) एक ही रूपको; **बहुधा**=बहुत प्रकारसे; **करोति**=बना लेता है; **तम् आत्मस्थम्**=उस अपने अंदर रहनेवाले (परमात्मा)-को; **ये धीराः**=जो ज्ञानी पुरुष; **अनुपश्यन्ति**=निरन्तर देखते रहते हैं; **तेषाम्**=उन्हींको; **शाश्वतम् सुखम्**=सदा अटल रहनेवाला परमानन्दस्वरूप वास्तविक सुख (मिलता है); **इतरेषाम् न**=दूसरोंको नहीं॥ १२॥

व्याख्या—जो परमात्मा सदा सबके अन्तरात्मारूपसे स्थित हैं, जो अद्वितीय हैं और सम्पूर्ण जगत्में देव-मनुष्यादि सभीको सदा अपने वशमें रखते हैं, वे ही सर्वशक्तिमान् सर्वभवनसमर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूपको अपनी लीलासे बहुत प्रकारका बना लेते हैं। उन परमात्माको जो ज्ञानी महापुरुष निरन्तर अपने अंदर स्थित देखते हैं, उन्हींको सदा स्थिर रहनेवाला—सनातन परमानन्द मिलता है, दूसरोंको नहीं॥ १२॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ १३॥

यः=जो; **नित्यानाम्***=नित्योंका (भी); **नित्यः**=नित्य (है); **चेतनानाम्**=चेतनोंका (भी); **चेतनः**=चेतन है (और); **एकः बहूनाम्**=एक होते हुए भी इन अनेक (जीवों)-की; **कामान्**=कामनाओंको; **विदधाति**=पूर्ण करता है; **तम् आत्मस्थम्**=उस अपने अंदर रहनेवाले (पुरुषोत्तमको); **ये धीराः**=जो ज्ञानी; **अनुपश्यन्ति**=निरन्तर देखते रहते हैं; **तेषाम्**=उन्हींको; **शाश्वती शान्तिः**=सदा अटल रहनेवाली शान्ति (प्राप्त होती है); **इतरेषाम् न**=दूसरोंको नहीं॥ १३॥

व्याख्या—जो समस्त नित्य चेतन आत्माओंके भी नित्य चेतन आत्मा हैं और जो स्वयं एक होते हुए ही अनन्त जीवोंके भोगोंका उन-उनके कर्मानुसार निर्माण करते हैं, उन सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तमको जो ज्ञानी महापुरुष अपने अंदर स्थित देखते हैं, उन्हींको सदा स्थिर रहनेवाली—सनातनी परमशान्ति मिलती है, दूसरोंको नहीं†॥ १३॥

सम्बन्ध—*जिज्ञासु नचिकेता इस प्रकार उस ब्रह्मप्राप्तिके आनन्द और शान्तिकी महिमा सुनकर मन-ही-मन विचार करने लगा—*

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा॥ १४॥

तत्=वह; **अनिर्देश्यम्**=अनिर्वचनीय; **परमम्**=परम; **सुखम्**=सुख; **एतत्**=यह (परमात्मा ही है); **इति**=यों;

---

* कुछ लोगोंने 'नित्यः अनित्यानाम्' पाठ मानकर उसका अर्थ यह किया है कि यह आत्मा जितने भी विनाशशील भावपदार्थ हैं, उनमें अविनाशी है। अर्थात् यह 'शक्तिशेषलयका आधार' है। जब समस्त पदार्थोंका लय हो जाता है, तब उस लयको भी अपने अंदर विलीन करनेवाला, लयका भी साक्षी आत्मा रह जाता है। इसलिये वह अनित्योंमें नित्य है।

† कुछ महानुभावोंने इस मन्त्रका ऐसा अर्थ किया है—

जो आकाश, काल आदि नित्यके नामसे प्रसिद्ध पदार्थोंको नित्यत्व प्रदान करनेवाला परम नित्य है और जो ब्रह्मादि चेतनोंको भी चेतनत्व प्रदान करनेवाला चेतन है, जो अकेला ही अनेकोंकी कामनाएँ पूर्ण करता है, अपनी बुद्धिमें स्थित उस आत्माको जो विवेकशील पुरुष देखते हैं, उन्हींको नित्य शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं।

मन्यन्ते=(ज्ञानीजन) मानते हैं; **तत्**=उसको; **कथम् नु**=किस प्रकारसे; **विजानीयाम्**=मैं भलीभाँति समझूँ; **किमु**=क्या वह; **भाति**=प्रकाशित होता है; **वा**=या; **विभाति**=अनुभवमें आता है॥ १४॥

व्याख्या—उस सनातन परम आनन्द और परमशान्तिको प्राप्त ज्ञानी महात्माजन ऐसा मानते हैं कि परब्रह्म पुरुषोत्तम ही वह अलौकिक सर्वोपरि आनन्द है, जिसका निर्देश मन-वाणीसे नहीं किया जा सकता। उस परमानन्दस्वरूप परमेश्वरको मैं अपरोक्षरूपसे किस प्रकार जानूँ? क्या वह प्रत्यक्ष प्रकट होता है? या अनुभवमें आता है? उसका ज्ञान किस प्रकारसे होता है?॥ १४॥

सम्बन्ध—*नचिकेताके आन्तरिक भावको समझकर यमराजने कहा—*

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १५॥

तत्र=वहाँ; **न सूर्यः भाति**=न (तो) सूर्य प्रकाशित होता है; **न चन्द्रतारकम्**=न चन्द्रमा और तारोंका समुदाय (ही प्रकाशित होता है); **न इमाः विद्युतः भान्ति**=(और) न ये बिजलियाँ ही (वहाँ) प्रकाशित होती हैं; **अयम् अग्निः कुतः**=फिर यह (लौकिक) अग्नि कैसे (प्रकाशित हो सकता है क्योंकि); **तम्**=उसके; **भान्तम् एव**=प्रकाशित होनेपर ही (उसीके प्रकाशसे); **सर्वम्**=ऊपर बतलाये हुए सूर्यादि सब; **अनुभाति**=प्रकाशित होते हैं; **तस्य भासा**=उसीके प्रकाशसे; **इदम् सर्वम्**=यह सम्पूर्ण जगत्; **विभाति**=प्रकाशित होता है॥ १५॥

व्याख्या—उस स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरके समीप यह सूर्य नहीं प्रकाशित होता। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश प्रकट होनेपर खद्योतका प्रकाश लुप्त हो जाता है, वैसे ही सूर्यका आंशिक तेज भी उस असीम तेजके सामने लुप्त हो जाता है। चन्द्रमा, तारागण और बिजली भी वहाँ नहीं चमकते; फिर इस लौकिक अग्निकी तो बात ही क्या है। क्योंकि प्राकृत जगत्में जो कुछ भी तत्त्व प्रकाशशील हैं, सब उस परब्रह्म परमेश्वरकी प्रकाश-शक्तिके अंशको पाकर ही प्रकाशित हैं। वे अपने प्रकाशकके समीप अपना प्रकाश कैसे फैला सकते हैं। सारांश यह कि यह सम्पूर्ण जगत् उस जगदात्मा पुरुषोत्तमके प्रकाशसे अथवा उस प्रकाशके एक क्षुद्रतम अंशसे प्रकाशित हो रहा है॥ १५॥

॥ द्वितीय वल्ली समाप्त॥ २॥ (५)

[तृतीय वल्ली]

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन॥ एतद्वै तत्॥ १॥

ऊर्ध्वमूलः=ऊपरकी ओर मूलवाला; **अवाक्शाखः**=नीचेकी ओर शाखावाला; **एषः**=यह (प्रत्यक्ष जगत्); **सनातनः अश्वत्थः**=सनातन पीपलका वृक्ष है; [**तन्मूलम्**=इसका मूलभूत;] **तत् एव शुक्रम्**=वह (परमेश्वर) ही विशुद्ध तत्त्व है; **तत् ब्रह्म**=वही ब्रह्म है (और); **तत् एव**=वही; **अमृतम् उच्यते**=अमृत कहलाता है; **सर्वे लोकाः**=सब लोक; **तस्मिन्**=उसीके; **श्रिताः**=आश्रित हैं; **कश्चन उ**=कोई भी; **तत्**=उसको; **न अत्येति**=लाँघ नहीं सकता; **एतत् वै**=यही है; **तत्**=वह (परमात्मा, जिसके विषयमें तुमने पूछा था)॥ १॥

व्याख्या—जिसका मूलभूत परब्रह्म पुरुषोत्तम ऊपर है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, सबसे सूक्ष्म और सर्वशक्तिमान् है और जिसकी प्रधान शाखा ब्रह्मा तथा अवान्तर शाखाएँ देव, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि क्रमसे नीचे हैं, ऐसा यह ब्रह्माण्डरूप पीपल-वृक्ष अनादिकालीन—सदासे है। कभी प्रकटरूपमें और कभी अप्रकटरूपसे अपने कारणरूप परब्रह्ममें नित्य स्थित रहता है, अतः सनातन है। इसका जो मूल कारण है, जिससे यह

उत्पन्न होता है, जिससे सुरक्षित है और जिसमें विलीन होता है, वही विशुद्ध दिव्य तत्त्व है, वही ब्रह्म है, उसीको अमृत कहते हैं तथा सब लोक उसीके आश्रित हैं। कोई भी उसका अतिक्रमण करनेमें समर्थ नहीं है। नचिकेता! यही है वह तत्त्व, जिसके सम्बन्धमें तुमने पूछा था॥ १॥

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २॥

निःसृतम्=(परब्रह्म परमेश्वरसे) निकला हुआ; **इदम् यत् किं च**=यह जो कुछ भी; **सर्वम् जगत्**=सम्पूर्ण जगत् है; **प्राणे एजति**=उस प्राणस्वरूप परमेश्वरमें ही चेष्टा करता है; **एतत्**=इस; **उद्यतम् वज्रम्**=उठे हुए वज्रके समान; **महत् भयम्**=महान् भयस्वरूप (सर्वशक्तिमान्) परमेश्वरको; **ये विदुः**=जो जानते हैं; **ते**=वे; **अमृताः भवन्ति**=अमर हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मरणसे छूट जाते हैं॥ २॥

व्याख्या—यह जो कुछ भी इन्द्रिय, मन और बुद्धिके द्वारा देखने, सुनने और समझनेमें आनेवाला सम्पूर्ण चराचर जगत् है, सब अपने परम कारणरूप जिन परब्रह्म पुरुषोत्तमसे प्रकट हुआ है, उन्हीं प्राणस्वरूप परमेश्वरमें चेष्टा करता है अर्थात् इसकी चेष्टाओंके आधार एवं नियामक भी वे परमेश्वर ही हैं। वे परमेश्वर परम दयालु होते हुए भी महान् भयरूप हैं—छोटे-बड़े सभी उनसे भय मानते हैं। साथ ही वे उठे हुए वज्रके समान हैं। जिस प्रकार हाथमें वज्र लिये हुए प्रभुको देखकर सभी सेवक यथाविधि निरन्तर आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार समस्त देवता सदा-सर्वदा नियमानुसार इन परमेश्वरके आज्ञापालनमें नियुक्त रहते हैं। इस परब्रह्मको जो जानते हैं, वे तत्त्वज्ञ पुरुष अमर हो जाते हैं—जन्म-मृत्युके चक्रसे छूट जाते हैं॥ २॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ ३॥

अस्य भयात्=इसीके भयसे; **अग्निः तपति**=अग्नि तपता है; **भयात्**=(इसीके) भयसे; **सूर्यः तपति**=सूर्य तपता है; **च**=तथा; **(अस्य) भयात्**=इसीके भयसे; **इन्द्रः वायुः**=इन्द्र, वायु; **च**=और; **पञ्चमः मृत्युः**=पाँचवें मृत्युदेवता; **धावति**=(अपने-अपने काममें) प्रवृत्त हो रहे हैं॥ ३॥

व्याख्या—सबपर शासन करनेवाले और सबको नियन्त्रणमें रखकर नियमानुसार चलानेवाले इन परमेश्वरके भयसे ही अग्नि तपता है, इन्हींके भयसे सूर्य तप रहा है; इन्हींके भयसे इन्द्र, वायु और पाँचवें मृत्युदेवता दौड़-दौड़कर जल आदि बरसाना, चलना, जीवोंके शरीरोंका अन्त करना आदि अपना-अपना काम त्वरापूर्वक कर रहे हैं। सारांश यह कि इस जगत्में देवसमुदायके द्वारा सारे कार्य जो नियमितरूपसे सम्पन्न हो रहे हैं, वे इन सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सबके शासक एवं नियन्ता परमेश्वरके अमोघ शासनसे ही हो रहे हैं॥ ३॥

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते॥ ४॥

चेत्=यदि; **शरीरस्य**=शरीरका; **विस्रसः**=पतन होनेसे; **प्राक्**=पहले-पहले; **इह**=इस मनुष्यशरीरमें ही (साधक); **बोद्धुम्**=परमात्माका साक्षात्; **अशकत्**=कर सका (तब तो ठीक है); **ततः**=नहीं तो फिर; **सर्गेषु**= अनेक कल्पोंतक; **लोकेषु**=नाना लोक और योनियोंमें; **शरीरत्वाय कल्पते**=शरीर धारण करनेको विवश होता है॥ ४॥

व्याख्या—इस सर्वशक्तिमान्, सबके प्रेरक और सबपर शासन करनेवाले परमेश्वरको यदि कोई साधक इस दुर्लभ मनुष्यशरीरका नाश होनेसे पहले ही जान लेता है अर्थात् जबतक इसमें भजन-स्मरण आदि साधन करनेकी शक्ति बनी हुई है और जबतक यह मृत्युके मुखमें नहीं चला जाता, तभीतक (इसके रहते-रहते ही) सावधानीके साथ प्रयत्न करके परमात्माके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब तो उसका जीवन सफल हो जाता है; अनादिकालसे जन्म-मृत्युके प्रवाहमें पड़ा हुआ वह जीव उससे छुटकारा पा जाता है। नहीं

तो, फिर उसे अनेक कल्पोंतक विभिन्न लोकों और योनियोंमें शरीर धारण करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। अतएव मनुष्यको मृत्युसे पहले-पहले ही परमात्माको जान लेना चाहिये*॥ ४॥

यथाऽऽदर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके॥ ५॥

यथा आदर्शे=जैसे दर्पणमें (सामने आयी हुई वस्तु दीखती है); **तथा आत्मनि**=वैसे ही शुद्ध अन्त:करणमें (ब्रह्मके दर्शन होते हैं); **यथा स्वप्ने**=जैसे स्वप्नमें (वस्तु अस्पष्ट दिखलायी देती है); **तथा पितृलोके**=उसी प्रकार पितृलोकमें (परमेश्वर दीखता है); **यथा अप्सु**=जैसे जलमें (वस्तुके रूपकी झलक पड़ती है); **तथा गन्धर्वलोके**=उसी प्रकार गन्धर्वलोकमें; **परि ददृशे इव**=परमात्माकी झलक-सी पड़ती है (और); **ब्रह्मलोके**=ब्रह्मलोकमें (तो); **छायातपयो: इव**=छाया और धूपकी भाँति (आत्मा और परमात्मा दोनोंका स्वरूप पृथक्-पृथक् स्पष्ट दिखलायी देता है)॥ ५॥

व्याख्या—जैसे मलरहित दर्पणमें उसके सामने आयी हुई वस्तु दर्पणसे विलक्षण और स्पष्ट दिखलायी देती है, उसी प्रकार ज्ञानी महापुरुषोंके विशुद्ध अन्त:करणमें वे परमेश्वर उससे विलक्षण एवं स्पष्ट दिखलायी देते हैं। जैसे स्वप्नमें वस्तुसमूह यथार्थरूपमें न दीखकर स्वप्नद्रष्टा मनुष्यकी वासना और विविध संस्कारोंके अनुसार कहींकी वस्तु कहीं विशृङ्खलरूपसे अस्पष्ट दिखायी देती है, वैसे ही पितृलोकमें परमेश्वरका स्वरूप यथावत् स्पष्ट न दीखकर अस्पष्ट ही दीखता है; क्योंकि पितृलोकको प्राप्त प्राणी पूर्व-जन्मकी स्मृति और वहाँके सम्बन्धियोंका पूर्ववत् ज्ञान होनेके कारण तदनुरूप वासनाजालमें आबद्ध रहते हैं। गन्धर्वलोक पितृलोककी अपेक्षा कुछ श्रेष्ठ है; इसलिये जैसे स्वप्नकी अपेक्षा जाग्रत् अवस्थामें जलके अंदर देखनेपर प्रतिबिम्ब कुछ-का-कुछ न दीखकर यथावत् तो दीखता है,परंतु जलकी लहरोंके कारण हिलता हुआ-सा प्रतीत होता है, स्पष्ट नहीं दीखता, वैसे ही गन्धर्वलोकमें भी भोग-लहरियोंमें लहराते हुए चित्तसे युक्त वहाँके निवासियोंको भगवान्‌के सर्वथा स्पष्ट दर्शन नहीं होते। किंतु ब्रह्मलोकमें वहाँ रहनेवालोंको छाया और धूपकी तरह अपना और उन परब्रह्म परमेश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष और सुस्पष्ट होता है। वहाँ किसी प्रकारका भ्रम नहीं रहता। तीसरी वल्लीके पहले मन्त्रमें बतलाया गया है कि यह मनुष्यशरीर भी एक लोक है, इसमें परब्रह्म परमेश्वर और जीवात्मा—दोनों छाया और धूपकी तरह हृदयरूप गुफामें रहते हैं। अत: मनुष्यको दूसरे लोकोंकी कामना न करके इस मनुष्यशरीरके रहते-रहते ही उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लेना चाहिये। यही इसका अभिप्राय है†॥ ५॥

---

* एक महानुभावने इस मन्त्रमें 'सर्गेषु' के स्थानपर 'स्वर्गेषु' पाठ मानकर इस प्रकार अर्थ किया है—

यदि इस शरीरका पतन होनेसे पहले ही कोई भगवान्‌को जान लेता है तो वह फिर स्वर्ग नामसे ख्यात वैकुण्ठादि दिव्य लोकोंमें अप्राकृत चिदानन्दात्मक शरीर प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

† इस मन्त्रका भावार्थ निम्नलिखित रूपोंमें भी किया गया है—

(१) जैसे दर्पणमें मुखमण्डल स्पष्ट दीखता है, वैसे ही महापुरुषोंको ज्ञाननेत्रोंके द्वारा अपने अंदर भगवान्‌के स्पष्ट दर्शन होते हैं। लोकोंमें प्राय: इस प्रकारका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। पितृलोकमें वैसे ही अस्पष्ट ज्ञान होता है, जैसा स्वप्नमें होता है; गन्धर्वलोकका स्तर ज्ञानमें पितृलोककी अपेक्षा कहीं ऊँचा है, इसलिये वहाँ पितृलोककी अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट ज्ञान होता है—वैसे ही जैसे लहराते हुए जलमें अस्पष्ट मुख दीखता है। ब्रह्मलोकमें अधिक स्पष्ट ज्ञान होता है—वैसे ही जैसे छाया-धूपके बीचमें प्रभातके समय, जब न तो दुपहरीका प्रकाश रहता है और न रात्रिका अन्धकार होता है एवं वस्तु स्पष्ट दीखती है।

(२) जैसा काँच होता है, उसके सामने आयी हुई वस्तु उसीके अनुसार छोटी-बड़ी, दूर-समीप या लाल-पीली दिखलायी देती है। वैसे ही इस लोकमें मनुष्यका जैसा—मलिन, मिश्रित अथवा स्वच्छ अन्त:करण होता है, वैसा ही उसके द्वारा भगवान्‌का रूप समझमें आता है। पितृलोक अपेक्षाकृत शुद्ध है; इसलिये वहाँ, जैसे स्वप्नमें वस्तु विशृङ्खल दीखनेपर भी कुछ स्पष्ट दीखती है, वैसे ही पितृलोकमें परमेश्वरके रूपका ज्ञान होता है। गन्धर्वलोकमें, निर्मल जलमें दीखनेवाले रूपकी भाँति और भी स्पष्ट दिखायी देता है एवं ब्रह्मलोकमें तो छाया तथा धूपकी भाँति बहुत स्पष्टरूपमें ऐसा ज्ञान होता है कि पूर्णप्रकाश परमेश्वरके साथ ही उसीके आधारपर अल्पप्रकाश जीवात्मा भी स्थित है अर्थात् एक ही परमात्मा दो रूपोंमें प्रकट हैं।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति॥ ६॥

पृथक्=(अपने-अपने कारणसे) भिन्न-भिन्न रूपोंमें; **उत्पद्यमानानाम्**=उत्पन्न हुई; **इन्द्रियाणाम्**=इन्द्रियोंकी; **यत्**=जो; **पृथक् भावम्**=पृथक्-पृथक् सत्ता है; **च**=और; [**यत्**=जो उनका;] **उदयास्तमयौ**=उदय हो जाना और लय हो जानारूप स्वभाव है; [**तत्**=उसे]; **मत्वा**=जानकर; **धीरः**=(आत्माका स्वरूप उनसे विलक्षण समझनेवाला) धीर पुरुष; **न शोचति**=शोक नहीं करता॥ ६॥

व्याख्या—शब्द-स्पर्शादि विषयोंके अनुभवरूप पृथक्-पृथक् कार्य करनेके लिये भिन्न-भिन्न रूपमें उत्पन्न हुई इन्द्रियोंके जो पृथक्-पृथक् भाव हैं तथा जाग्रत् अवस्थामें कार्यशील हो जाना और सुषुप्तिकालमें लय हो जाना रूप जो उनकी परिवर्तनशीलता है, इनपर विचार करके जब बुद्धिमान् मनुष्य इस रहस्यको समझ लेता है कि 'ये इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि या इनका सङ्घातरूप यह शरीर मैं नहीं हूँ, मैं इनसे सर्वथा विलक्षण नित्य चेतन हूँ, सर्वथा विशुद्ध एवं सदा एकरस हूँ,' तब वह किसी प्रकारका शोक नहीं करता। सदाके लिये दुःख और शोकसे रहित हो जाता है॥ ६॥

सम्बन्ध—*इस मन्त्रमें तत्त्वविचार करते हैं*—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥ ७॥

इन्द्रियेभ्यः=इन्द्रियोंसे (तो); **मनः**=मन; **परम्**=श्रेष्ठ है; **मनसः**=मनसे; **सत्त्वम्**=बुद्धि; **उत्तमम्**=उत्तम है; **सत्त्वात्**=बुद्धिसे; **महान् आत्मा**=उसका स्वामी जीवात्मा; **अधि**=ऊँचा है और; **महतः**=जीवात्मासे; **अव्यक्तम्**=अव्यक्त शक्ति; **उत्तमम्**=उत्तम है॥ ७॥

व्याख्या—इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि उत्तम है, बुद्धिसे उनका स्वामी जीवात्मा ऊँचा है; क्योंकि उन सबपर उसका अधिकार है। वे सभी उसकी आज्ञा पालन करनेवाले हैं और यह इनका शासक है, अतः उनसे सर्वथा विलक्षण है। इस जीवात्मासे भी इसका अव्यक्त शरीर—भगवान्‌की वह प्रकृति प्रबल है, जिसने इसको बन्धनमें डाल रखा है। तुलसीदासजीने भी कहा है *'जेहि बस कीन्हे जीव निकाया'*। गीतामें भी प्रकृतिजनित तीनों गुणोंके द्वारा जीवात्माके बाँधे जानेकी बात कही गयी है (१४।५)॥ ७॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ ८॥

तु=परन्तु; **अव्यक्तात्**=अव्यक्तसे (भी वह); **व्यापकः**=व्यापक; **च**=और; **अलिङ्गः एव**=सर्वथा आकाररहित; **पुरुषः**=परम पुरुष; **परः**=श्रेष्ठ है; **यम्**=जिसको; **ज्ञात्वा**=जानकर; **जन्तुः**=जीवात्मा; **मुच्यते**=मुक्त हो जाता है; **च**=और; **अमृतत्वम्**=अमृतस्वरूप आनन्दमय ब्रह्मको; **गच्छति**=प्राप्त हो जाता है॥ ८॥

व्याख्या—परंतु इस प्रकृतिसे भी इसके स्वामी परमपुरुष परमात्मा श्रेष्ठ हैं, जो निराकाररूपसे सर्वत्र व्यापक हैं (गीता ९।४)। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह इस प्रकृतिके बन्धनसे छूटनेके लिये इसके स्वामी परब्रह्म पुरुषोत्तमकी शरण ग्रहण करे। परमात्मा जब इस जीवपर दया करके मायाके परदेको हटा लेते हैं, तभी इसको उनकी प्राप्ति होती है। नहीं तो, यह भाग्यहीन जीव सर्वदा अपने समीप रहते हुए भी उन परमेश्वरको पहचान नहीं पाता, जिनको जानकर यह जीवात्मा प्रकृतिके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाता है और अमृतस्वरूप परमानन्दको पा लेता है॥ ८॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ ९॥

अस्य=इस परमेश्वरका; **रूपम्**=वास्तविक स्वरूप; **संदृशे**=अपने सामने प्रत्यक्ष विषयके रूपमें; **न तिष्ठति**=नहीं ठहरता; **एनम्**=इसको; **कश्चन**=कोई भी; **चक्षुषा**=चर्मचक्षुओंद्वारा; **न पश्यति**=नहीं देख पाता; **मनसा**=मनसे; **अभिक्लृप्तः**=बारम्बार चिन्तन करके ध्यानमें लाया हुआ (वह परमात्मा); **हृदा**=निर्मल और निश्चल हृदयसे; **मनीषा**=(और) विशुद्ध बुद्धिके द्वारा; [**दृश्यते**=देखनेमें आता है;] **ये एतत् विदुः**=जो इसको जानते हैं; **ते अमृताः भवन्ति**=वे अमृत (आनन्द)-स्वरूप हो जाते हैं॥ ९॥

व्याख्या—इन परब्रह्म परमेश्वरका दिव्य स्वरूप प्रत्यक्ष विषयके रूपमें अपने सामने नहीं ठहरता; परमात्माके दिव्य रूपको कोई भी मनुष्य प्राकृत चर्मचक्षुओंके द्वारा नहीं देख सकता। जो भाग्यवान् साधक निरन्तर प्रेमपूर्वक मनसे उनका चिन्तन करता रहता है, उसके हृदयमें जब भगवान्‌के उस दिव्य स्वरूपका ध्यान प्रगाढ़ होता है, उस समय उस साधकका हृदय भगवान्‌के ध्यानजनित स्वरूपमें निश्चल हो जाता है। ऐसे निश्चल हृदयसे ही वह साधक विशुद्ध बुद्धिरूप नेत्रोंके द्वारा परमात्माके उस दिव्य स्वरूपकी झाँकी करता है। जो इन परमेश्वरको जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, अर्थात् परमानन्दस्वरूप बन जाते हैं॥ ९॥

सम्बन्ध—*योगधारणाके द्वारा मन और इन्द्रियोंको रोककर परमात्माको प्राप्त करनेका दूसरा साधन बतलाते हैं*—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥ १०॥

यदा=जब; **मनसा सह**=मनके सहित; **पञ्च ज्ञानानि**=पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ; **अवतिष्ठन्ते**=भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं; **बुद्धिः च**=और बुद्धि भी; **न विचेष्टति**=किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं करती; **ताम्**=उस स्थितिको; **परमाम् गतिम् आहुः**=(योगी) परमगति कहते हैं॥ १०॥

व्याख्या—योगाभ्यास करते-करते जब मनके सहित पाँचों इन्द्रियाँ भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी एक परमात्माके स्वरूपमें इस प्रकार स्थित हो जाती है, जिससे उसको परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तुका तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, उससे कोई भी चेष्टा नहीं बनती, उस स्थितिको योगीगण परमगति—योगकी सर्वोत्तम स्थिति—बतलाते हैं॥ १०॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ ११॥

ताम्=उस; **स्थिराम् इन्द्रियधारणाम्**=इन्द्रियोंकी स्थिर धारणाको ही; **योगम् इति**='योग'; **मन्यन्ते**=मानते हैं; **तदा**=उस समय; **अप्रमत्तः**=(साधक) प्रमादरहित; **भवति**=हो जाता है; **हि योगः**=क्योंकि योग; **प्रभवाप्ययौ**=उदय और अस्त होनेवाला है॥ ११॥

व्याख्या—इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी स्थिर धारणाका ही नाम योग है—ऐसा अनुभवी योगी महानुभाव मानते हैं; क्योंकि उस समय साधक विषयदर्शनरूप सब प्रकारके प्रमादसे सर्वथा रहित हो जाता है। परंतु यह योग उदय और अस्त होनेवाला है; अतः परमात्माको प्राप्त करनेकी इच्छावाले साधकको निरन्तर योगयुक्त रहनेका दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिये॥ ११॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥ १२॥

न वाचा=(वह परब्रह्म परमेश्वर) न तो वाणीसे; **न मनसा**=न मनसे (और); **न चक्षुषा एव**=न नेत्रोंसे ही; **प्राप्तुम् शक्यः**=प्राप्त किया जा सकता है (फिर); **तत् अस्ति**=वह 'अवश्य' है; **इति ब्रुवतः अन्यत्र**=इस प्रकार कहनेवालेके अतिरिक्त दूसरेको; **कथम् उपलभ्यते**=कैसे मिल सकता है?॥ १२॥

व्याख्या—वह परब्रह्म परमात्मा वाणी आदि कर्मेन्द्रियोंसे, चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियोंसे और मन-बुद्धिरूप अन्तःकरणसे भी प्राप्त नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह इन सबकी पहुँचसे परे है। परंतु वह है अवश्य और उसे प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा रखनेवालेको वह अवश्य मिलता है—इस बातको जो नहीं कहता, नहीं स्वीकार करता अर्थात् इसपर जिसका दृढ़ विश्वास नहीं है, उसको वह कैसे मिल सकता है? अतः पूर्व मन्त्रोंमें बतलायी हुई रीतिके अनुसार इन्द्रिय-मन आदि सबको योगाभ्यासके द्वारा रोककर 'वह अवश्य है और साधकको मिलता है' ऐसे दृढ़तम निश्चयसे निरन्तर उसकी प्राप्तिके लिये परम उत्कण्ठाके साथ प्रयत्नशील रहना चाहिये॥ १२॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति॥ १३॥

अस्ति=(अतः उस परमात्माको पहले तो) 'वह अवश्य है'; **इति एव**=इस प्रकार निश्चयपूर्वक; **उपलब्धव्यः**=ग्रहण करना चाहिये; अर्थात् पहले उसके अस्तित्वका दृढ़ निश्चय करना चाहिये; [**तदनु**=तदनन्तर;] **तत्त्वभावेन**=तत्त्वभावसे भी; [**उपलब्धव्यः**=उसे प्राप्त करना चाहिये;] **उभयोः**=इन दोनों प्रकारोंमेंसे; **अस्ति इति एव**='वह अवश्य है' इस प्रकार निश्चयपूर्वक; **उपलब्धस्य**=परमात्माकी सत्ताको स्वीकार करनेवाले साधकके लिये; **तत्त्वभावः**=परमात्माका तात्त्विक स्वरूप (अपने-आप); **प्रसीदति**=(शुद्ध हृदयमें) प्रत्यक्ष हो जाता है॥ १३॥

व्याख्या—साधकको चाहिये कि पहले तो वह इस बातका दृढ़ निश्चय करे कि 'परमेश्वर अवश्य हैं और वे साधकको अवश्य मिलते हैं;' फिर इसी विश्वाससे उन्हें स्वीकार करे और उसके पश्चात् तात्त्विक विवेचनपूर्वक निरन्तर उनका ध्यान करके उन्हें प्राप्त करे। जब साधक इस निश्चित विश्वाससे भगवान्‌को स्वीकार कर लेता है कि 'वे अवश्य हैं और अपने हृदयमें ही विराजमान हैं, यत्नशीलको उनकी प्राप्ति अवश्य होती है,' तो परमात्माका वह तात्त्विक दिव्य स्वरूप उसके विशुद्ध हृदयमें अपने-आप प्रकट हो जाता है, उसका प्रत्यक्ष हो जाता है॥ १३॥

सम्बन्ध—*अब निष्कामभावकी महिमा बतलाते हैं—*

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ १४॥

अस्य=इस (साधक)-के; **हृदि श्रिताः**=हृदयमें स्थित; **ये कामाः**=जो कामनाएँ (हैं); **सर्वे यदा**=(वे) सब-की-सब जब; **प्रमुच्यन्ते**=समूल नष्ट हो जाती हैं; **अथ**=तब; **मर्त्यः**=मरणधर्मा मनुष्य; **अमृतः**=अमर; **भवति**=हो जाता है (और); **अत्र**=(वह) यहीं; **ब्रह्म समश्नुते**=ब्रह्मका भलीभाँति अनुभव कर लेता है॥ १४॥

व्याख्या—मनुष्यका हृदय नित्य-निरन्तर विभिन्न प्रकारकी इहलौकिक और पारलौकिक कामनाओंसे भरा रहता है; इसी कारण न तो वह कभी यह विचार ही करता है कि परम आनन्दस्वरूप परमेश्वरको किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है और न काम्यविषयोंकी आसक्तिके कारण वह परमात्माको पानेकी अभिलाषा ही करता है। ये सारी कामनाएँ साधक पुरुषके हृदयसे जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब वह—जो सदासे मरणधर्मा था—अमर हो जाता है और यहीं—इस मनुष्य-शरीरमें ही उस परब्रह्म परमेश्वरका भलीभाँति साक्षात् अनुभव कर लेता है॥ १४॥

सम्बन्ध—*संशयरहित दृढ़ निश्चयकी महिमा बतलाते हैं—*

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्॥ १५॥

यदा=जब (इसके); **हृदयस्य**=हृदयकी; **सर्वे**=सम्पूर्ण; **ग्रन्थयः**=ग्रन्थियाँ; **प्रभिद्यन्ते**=भलीभाँति खुल जाती हैं; **अथ**=तब; **मर्त्यः**=वह मरणधर्मा मनुष्य; **इह**=इसी शरीरमें; **अमृतः**=अमर; **भवति**=हो जाता है; **हि एतावत्**=बस, इतना ही; **अनुशासनम्**=सनातन उपदेश है॥ १५॥

व्याख्या—जब साधकके हृदयकी अहंता-ममतारूप समस्त अज्ञान-ग्रन्थियाँ भलीभाँति कट जाती हैं, उसके सब प्रकारके संशय सर्वथा नष्ट हो जाते हैं और उपर्युक्त उपदेशके अनुसार उसे यह दृढ़ निश्चय हो जाता है कि 'परब्रह्म परमेश्वर अवश्य हैं और वे निश्चय ही मिलते हैं,' तब वह इस शरीरमें रहते हुए ही परमात्माका साक्षात् करके अमर हो जाता है। बस, इतना ही वेदान्तका सनातन उपदेश है॥ १५॥

सम्बन्ध—*अब मरनेके बाद होनेवाली जीवात्माकी गतिका वर्णन करते हैं—*

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति॥ १६॥

हृदयस्य=हृदयकी; **शतम् च एका च**=(कुल मिलाकर) एक सौ एक; **नाड्यः**=नाड़ियाँ हैं; **तासाम्**=उनमेंसे; **एका**=एक; **मूर्धानम्**=मूर्धा (कपाल)-की ओर; **अभिनिःसृता**=निकली हुई है (इसे ही सुषुम्णा कहते हैं); **तया**=उसके द्वारा; **ऊर्ध्वम्**=ऊपरके लोकोंमें; **आयन्**=जाकर (मनुष्य); **अमृतत्वम्**=अमृतभावको; **एति**=प्राप्त हो जाता है; **अन्याः**=दूसरी एक सौ नाड़ियाँ; **उत्क्रमणे**=मरणकालमें (जीवको); **विष्वङ्**=नाना प्रकारकी योनियोंमें ले जानेकी हेतु; **भवन्ति**=होती हैं॥ १६॥

व्याख्या—हृदयमें एक सौ एक प्रधान नाड़ियाँ हैं, जो वहाँसे सब ओर फैली हुई हैं। उनमेंसे एक नाड़ी, जिसको सुषुम्णा कहते हैं, हृदयसे मस्तककी ओर गयी है। भगवान्‌के परमधाममें जानेका अधिकारी उस नाड़ीके द्वारा शरीरसे बाहर निकलकर सबसे ऊँचे लोकमें अर्थात् भगवान्‌के परमधाममें जाकर अमृतस्वरूप परमानन्दमय परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है और दूसरे जीव मरणकालमें दूसरी नाड़ियोंके द्वारा शरीरसे बाहर निकलकर अपने-अपने कर्म और वासनाके अनुसार नाना योनियोंको प्राप्त होते हैं॥ १६॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति॥ १७॥

अन्तरात्मा=सबका अन्तर्यामी; **अङ्गुष्ठमात्रः**=अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला; **पुरुषः**=परम पुरुष; **सदा**=सदैव; **जनानाम्**=मनुष्योंके; **हृदये**=हृदयमें; **सन्निविष्टः**=भलीभाँति प्रविष्ट है; **तम्**=उसको; **मुञ्जात्**=मूँजसे; **इषीकाम् इव**=सींककी भाँति; **स्वात्**=अपनेसे (और); **शरीरात्**=शरीरसे; **धैर्येण**=धीरतापूर्वक; **प्रबृहेत्**=पृथक् करके देखे; **तम्**=उसीको; **शुक्रम् अमृतम् विद्यात्**=विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे; **तम् शुक्रम् अमृतम् विद्यात्**=(और) उसीको विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे॥ १७॥

व्याख्या—सबके अन्तर्यामी परमपुरुष परमेश्वर हृदयके अनुरूप अङ्गुष्ठमात्र रूपवाले होकर सदैव सभी मनुष्योंके भीतर निवास करते हैं, तो भी मनुष्य उनकी ओर देखतातक नहीं! जो प्रमादरहित होकर उनकी प्राप्तिके साधनमें लगे हैं, उन मनुष्योंको चाहिये कि उन शरीरस्थ परमेश्वरको इस शरीरसे और अपने-आपसे भी

उसी तरह पृथक् और विलक्षण समझें, जैसे साधारण लोग मूँजसे सींकको पृथक् देखते हैं अर्थात् जिस प्रकार मूँजमें रहनेवाली सींक मूँजसे विलक्षण और पृथक् है, उसी प्रकार वह शरीर और आत्माके भीतर रहनेवाला परमेश्वर उन दोनोंसे सर्वथा विलक्षण है। वही विशुद्ध अमृत है, वही विशुद्ध अमृत है। यहाँ यह वाक्यकी पुनरावृत्ति उपदेशकी समाप्ति एवं सिद्धान्तकी निश्चितताको सूचित करती है*॥ १७॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव॥ १८॥

अथ=इस प्रकार उपदेश सुननेके अनन्तर; **नचिकेतः**=नचिकेता; **मृत्युप्रोक्ताम्**=यमराजद्वारा बतलायी हुई; **एताम्**=इस; **विद्याम् च**=विद्याको और; **कृत्स्नम्**=सम्पूर्ण; **योगविधिम्**=योगकी विधिको; **लब्ध्वा**=प्राप्त करके; **विमृत्युः**=मृत्युसे रहित (और); **विरजः (सन्)**=विशुद्ध—सब प्रकारके विकारोंसे शून्य होकर; **ब्रह्मप्राप्तः अभूत्**=ब्रह्मको प्राप्त हो गया; **अन्यः अपि यः**=दूसरा भी जो कोई; **(इदम्) अध्यात्मम् एवं वित्**=इस अध्यात्मविद्याको इसी प्रकार जाननेवाला है; **(सः अपि एवम्) एव (भवति)**=वह भी ऐसा ही हो जाता है अर्थात् मृत्यु और विकारोंसे रहित होकर ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है॥ १८॥

व्याख्या—इस प्रकार यमराजके द्वारा उपदिष्ट समस्त विवेचनको श्रद्धापूर्वक सुननेके पश्चात् नचिकेता उनके द्वारा बतायी हुई सम्पूर्ण विद्या और योगकी विधिको प्राप्त करके जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त, सब प्रकारके विकारोंसे रहित एवं सर्वथा विशुद्ध होकर परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्मविद्याको इस प्रकार नचिकेताकी भाँति ठीक-ठीक जाननेवाला और श्रद्धापूर्वक उसे धारण करनेवाला है, वह भी नचिकेताकी भाँति सब विकारोंसे रहित तथा जन्म-मृत्युसे मुक्त होकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है॥ १८॥

॥ तृतीय वल्ली समाप्त॥ ३॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय कठोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ कठोपनिषद्के आरम्भमें दिया जा चुका है।]

* इसका अन्य आदरणीय महानुभावोंने यह अर्थ किया है—

"अङ्गुष्ठमात्र पुरुष, जो जीवोंके हृदयमें स्थित उनका अन्तरात्मा है, उसे धैर्य—अप्रमादपूर्वक मूँजसे सींकके निकालनेके समान शरीरसे बाहर निकालकर पृथक् करे। शरीरसे पृथक् किये हुए उस अङ्गुष्ठमात्र पुरुषको ही चिन्मात्र विशुद्ध और अमृतमय ब्रह्म जाने। यहाँ 'तं विद्याच्छुक्रममृतम्' इस पदकी द्विरुक्ति और 'इति' उपनिषद्की समाप्तिके लिये है।"